# रॉकेट और अन्तरिक्ष यान

मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा-विभाग) भारत सरकार द्वारा स्वीकृत

# रॉकेट और अन्तरिक्ष यान

लेखक
जॉन डब्ल्यू. आर. टेलर

अलंकार प्रकाशन
666, झील, दिल्ली-110051

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा-मंत्रालय) भारत सरकार के सहयोग से कार्यान्वित 'लोकप्रिय पुस्तकों की प्रकाशन-योजना' के अंतर्गत स्वीकृत एवं कैपिटल बुक हाउस दिल्ली के निमित्त अलंकार प्रकाशन से प्रकाशित

अनुवादक :
निर्मल जैन

पुनरीक्षक :
के. एन. दुबे

मूल्य
पचास रुपये (50.00)

संस्करण
दूसरा: 1990
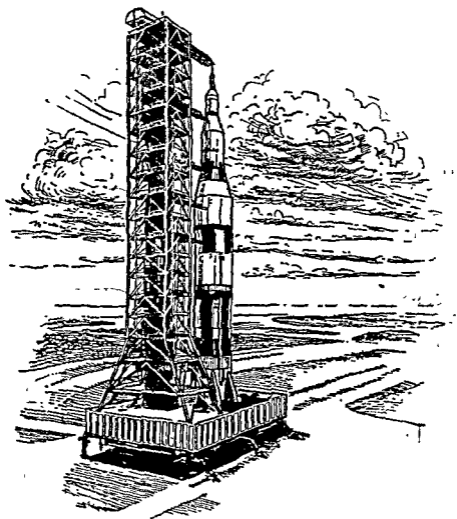
प्रकाशक
अलंकार प्रकाशन
666 भील, दिल्ली-110051

मुद्रक
कावेरी प्रिन्टर्स प्रा० लि०, नई दिल्ली-110002
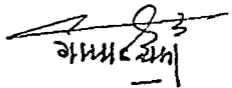
# दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा एवं समाज-कल्याण मंत्रालय के तत्वाधान मे पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाये कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनायें बनाई गई है, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशित पुस्तकों की निश्चित संख्या में प्रतियाँ खरीद कर उन्हें मदद पहुंचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'रॉकेट और अन्तरिक्ष यान' इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। पुस्तक में मानवयुक्त और मानव रहित अन्तरिक्षयानों का उल्लेख किया गया है जिनसे आज तक अन्तरिक्ष के ज्ञानवर्धन में योगदान मिला है। रॉकेट तथा अन्तरिक्ष यान की कार्यविधि सरल एवं रोचक शैली मे पुस्तक मे दी गई है। इसके अनुवाद और कापी-राइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग किया गया है।

हमे विश्वास है कि शासन और प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा हिन्दी पाठक लाभावित होंगे।

आशा है यह योजना सभी क्षेत्रों मे उत्तरोत्तर लोकप्रिय होगी।

(गोपाल शर्मा)
निदेशक

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय

# विषय-सूची

# अन्तरिक्ष में

फ्लोरिडा के केप कैनेडी नामक स्थान में चार घंटे पहले ही सूर्योदय हो चुका था। किन्तु बिजली की रोशनी से प्रकाशित और वातानुकूलित (air-conditioncd) नियंत्रण-केन्द्र में काम कर रहे लोगों को इसका कुछ पता नहीं। उनमें से कई लोगों ने निपुण इंजीनियरों के दलों के साथ उनकी कर्मशाला (workshop) में रात-भर काम किया था। यह कर्मशाला लॉंच कॉम्प्लैक्स 39-A (Launch Complex 39-A) पर बनी विशाल इस्पात गैण्ट्री (steel gantry) थी।

कंक्रीट के बने उड़ान-स्थल (launch-site) के पार केन्द्रित शक्तिशाली प्रकाश-बिन्दुओं (spotlights) की तेज रोशनी में इंजीनियर गैण्ट्री के आगे की ओर फैले प्लेटफ़ार्म में एकत्रित हो गये थे। वे सैटर्न-5 रॉकेट के प्रत्येक भाग की बार-बार जांच कर रहे थे जो शीघ्र ही अन्तरिक्ष में यात्रा आरम्भ करने वाला था।

वे अपना काम समाप्त कर चुके हैं। रॉकेट, आकाश की ओर संकेत करती हुई एक लम्बी सफ़ेद अंगुली की भांति, फ़ायरिंग प्लेटफ़ार्म पर सीधा और अकेला खड़ा है। एकाएक पूरा दृश्य निर्जीव-सा दीखने लगता है। आवाज़, गति आदि
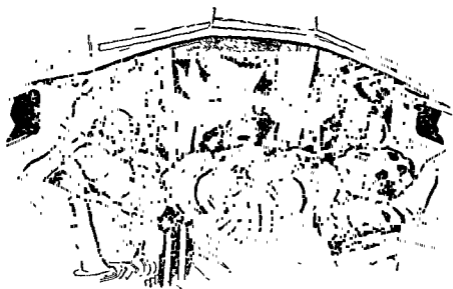
अपोलो कमान मॉड्यूल के अन्दर कर्मीदल

कोई भी पृथ्वी पर रॉकेट के जीवन के अन्तिम कुछ मिनटों की शान्ति को भंग नहीं कर रहे हैं।

भूमि के नीचे बने ब्लॉकहाउस से पैरिस्कोपों (periscopes) के द्वारा उसको गौर से देखा जा सकता है अथवा एक दीवार में ऊँचाई पर टेलीविज़न के परदे पर उस स्थान के चपटे अपरिवर्तनशील चित्र को देख सकते हैं जहाँ से रॉकेट फायर किया जायेगा। आस-पास का वातावरण तनावपूर्ण है। सैकंडों को बताने वाली घड़ी भी चुपचाप चल रही है और सब तरफ सन्नाटा है।

किसी 'बिग बर्ड' (big bird) को छोड़ने से पूर्व हमेशा ऐसा ही होता है। जब उड़ान (take off) के समय कुछ खराबी आ जाती है तो महीनों का काम एक ही दमक में बरबाद हो जाते हुए देख यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को अनेक बार विवश निराश और निरुत्साह होना पड़ा है और इसके बाद खराबी का कारण मालूम करने की कोशिश में जलते हुए ध्वंसावशेष (wreckage) को छाँटने का मनहूस काम करना पड़ा है।

इस बार कोई खराबी नही आनी चाहिये क्योंकि इस बार अन्तरिक्ष में छोड़े जाने वाले रॉकेट में सबसे उत्तम कार्गो विद्यमान है। रॉकेट के आगे के नुकीले भाग में बने एक छोटे से कक्ष में एक आदमी बैठता है जिसका जीवन उन डिजायनरो और इंजीनियरों के दल के संयुक्त कौशल पर निर्भर करता है जिन्होंने इस विलक्षण यान को बनाकर इसे उडान के लिये तैयार किया है।

इस बार कोई कमी नही रखी गई है क्योंकि अनेक वर्षो के अनुसधान के फलस्वरूप यह क्षण आया है। रॉकेट और उसके मोटरों को दर्जनों बार फ़ायर करके परख लिया गया है। चन्द्रमा के चारों ओर खोज करने के लिये जो यात्राएँ की गई थीं उनमें निर्देशन तन्त्र (guidance system), कैमरों और अन्य अनुसंधान-उपकरणों को पहले ही लेजाया जा चुका है। इस काम के लिये प्रशिक्षण लेते हुए लोगों ने स्वयं कई दिनो तक अन्तरिक्ष में रहकर काम किये हैं।

फिर भी आज केप कैनेडी में मौजूद कोई भी इजीनियर तब तक सन्तुष्ट और पूर्ण विश्वास का अनुभव नही कर सकता जब तक रॉकेट अपनी लम्बी उड़ान के पहले कुछ क्रांतिक मिनटों में सफल सिद्ध न हो जाये।

केवल पाइलट शान्त है। जेट लड़ाकू विमानों और अतिस्वनिक अनुसंधान-वायुयानों में की गई कठिन उड़ानों, दो आदमी वाले जेमिनी अन्तरिक्षयान में की गई कक्षा-यात्राओं और पृथ्वी पर चक्कर लगाने वाले केबिनों और प्रयोगशाला के 'यातना-कक्षों' के दीर्घकालीन सहनशक्ति-परीक्षण के बाद उसे इस कार्य के लिये तैयार किया गया है।

इतनी विशाल मशीन में नियन्त्रक और अन्य उपकरण सरल हैं। पाइलट का अधिकांश कार्य यहाँ तक कि सचालन और निर्देशन का काम भी रॉकेट के नीचे एक स्थान पर रखा 'ब्लैक बॉक्सों' (black boxes) का समूह करता है।

नीचे या पीछे ? जैसे ही पाइलट अपने को मजबूत और गद्दीदार सीट पर

पेटी से बांधता है उसे कुछ क्षणों के लिये आश्चर्य होता है क्योंकि उड़ान के लिये उसे अपनी पीठ के सहारे लेटना पड़ता है। क्या इससे कोई फ़र्क पड़ता है? अन्तरिक्ष में ऊपर या नीचे कुछ नही होता है।

अन्तरिक्ष में जहाँ पाइलट अब से कुछ क्षणों बाद होगा—सब कुछ ठीक है। उसके रेडियो में फ़ायर-अफ़सर (firing officer) की धीमी आवाज़ आती है: 'तीस सैकंड'।

इस रॉकेट से मिलते-जुलते रॉकेटों की जो फ़िल्में उसने देखी थीं उनको याद कर—जो फ़ायर-बटन को दबाने पर आग के बादल और धातु के चीथड़ो (torn metal) में बदल गये थे—एक सैकंड के लिये उसके मन में आतंक-सा छा जाता है। किन्तु एक बार फिर उसका प्रशिक्षण उसके भय को समाप्त कर देता है। वह सोचता है कि अकेले उसका ही परीक्षण नही हो रहा है और वह अपने दोनों ओर सीटों पर फ़ीतों से बंधे दो आदमियों को 'थम्ब्स अप' (अंगूठे ऊपर) का संकेत देता है।

'दस सैकंड—और अन्त में—नौ ···· आठ ···· सात ····· छः ···· पांच ·····'

उसकी नजर अन्तिम बार लीवरों और डायलों पर पड़ती है और वहाँ से हटकर एक तंग खिड़की पर जा अटकती है जहाँ से उसे नीले आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता है।

'· · चार · · तीन ···· दो··· एक ···· फ़ायर करो!'

अन्तिम बोल सुनने से पहले ही उसकी अंगुली बटन को दबाती है और वह अपनी कुर्सी पर झुक जाता है। रॉकेट के पिछले भाग से सफ़ेद धुएँ की तरंगें तीव्र गति से निकलने लगती हैं, जिससे उसका धातु वाला ढांचा काँपने लगता है। इस कम्पन को मोटी-मोटी गद्दीदार सीट पर भी अनुभव किया जा सकता है।

धीरे-धीरे ····इतना धीरे-धीरे कि मालूम होता है मानो रॉकेट लुढ़ककर गिर जायेगा, वह स्वतः ही गद्दी से उछलने लगता है। इंजनों की दहाड़ ब्लॉक-हाउस के अन्दर सुनी जा सकती है। उनकी शक्ति से जमीन भी काँपने लगती है।

इतिहास का सबसे बड़ा जोखिम का काम आरम्भ हो गया है। इस बार का गतव्य स्थान (destination) चन्द्रमा है।

## रॉकेट की कार्य-विधि

अन्तरिक्ष उड़ान के लिये हमें रॉकेट जैसे खतरनाक और अपूर्वानुमेय (unpredictable) यन्त्र का ही उपयोग क्यों करना चाहिये? हम अपने भावी अन्तरिक्षयान में जेट-इजनों और नोदकों (propellers) को क्यों फ़िट नही कर सकते है?

इन बातों का उत्तर 'अन्तरिक्ष' शब्द में निहित है; क्योंकि अब तक किसी भी वायुयान अथवा रॉकेट में फ़िट किये गये हर प्रकार के इंजन के लिये आवश्यक शक्ति उसके अन्दर जलने वाले ईंधन से प्राप्त की जाती है। किसी भी वस्तु को जलने के लिये ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और सभी सामान्य प्रकार के *वायुयान-शक्ति-संयंत्र* पिस्टन-इंजन, टर्बोजेट, टर्बोप्रोप, रैमजेट, पल्सजेट आदि—आवश्यक ऑक्सीजन हवा से प्राप्त करते हैं।

अन्तरिक्ष में हवा न होने के कारण अन्तरिक्षयान को लेजाने के लिये ये इंजन प्रत्यास्थ बेंड (elastic band) से अधिक उपयोगी नहीं होंगे। वास्तव में पृथ्वी से 80000 फुट यानी 15 मील की ऊँचाई पर ही हवा इतनी विरल है कि इससे अधिक ऊँचाई पर जेट-इंजनों का उपयोग नहीं किया जा सकता है जबकि इससे आधी ऊँचाई पर ही हवा इतनी विरल हो जाती है कि नोदकों को दक्षतापूर्वक काम करने में कठिनाई मालूम होने लगती है।

दूसरी ओर, जलने में मदद करने के लिये रॉकेट को हवा की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि उसके प्रणोदक (propellents) में ऑक्सीजन मौजूद रहती है।

आगे कुछ कहने से पहले यह निश्चित कर लेना आवश्यक है कि आप इंजन की शक्ति के बारे मे जानते हैं और यह समझते हैं कि जेट-इंजन या रॉकेट वायुयान को किस प्रकार आगे की ओर धकेलता है। यदि आपने इस सिरीज़ की 'Jet Planes Work Like This' नामक पुस्तक पढ़ी है तो आप इसके बारे में पहले से ही जानते होंगे और अगले नौ पैराग्राफ़ों को आप छोड़ सकते है।

हम पहले ही यह बता दें कि कोई भी जेट-इंजन अथवा रॉकेट उसके पीछे की ओर की हवा के विरुद्ध उसकी निकास गैसों (exhaust gases) के दाब से आगे नहीं धकेला जाता है। यदि ऐसा होता तो रॉकेट कभी भी अन्तरिक्ष में काम नहीं कर सकता, क्योंकि अन्तरिक्ष में उसे विपरीत दिशा में धकेलने के लिये हवा नहीं होती है।

सर आइजक न्यूटन 250 वर्ष पहले ही इस बात को बहुत अच्छी तरह जानते थे जबकि उन्होंने 'गति का तीसरा नियम' प्रस्तुत किया था। यह नियम इस प्रकार है—'प्रत्येक क्रिया की बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया होती है।'

भले ही आप उसके तात्पर्य को ठीक-ठीक न समझते हों, तो भी यदि आपने कभी किसी नाव से नदी के किनारे पर बहुत जोर से कूदने की कोशिश की हो

. ('ducking) के रूप में प्रतिक्रिया के परिणामों का अनुभव
।

अपने-आपको आगे की ओर धकेलने का आपका उद्देश्य
ओर नोदन (propel) करना था। न्यूटन का तात्पर्य
क्रिया से था। 'बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया' आपके पैर द्वारा
डाला गया बल है जिसके कारण नाव किनारे से दूर हट गई और
उछले।

अब इसी बात को रॉकेट इंजन के शब्दों में समझें।

से कूदने में आपने जो प्रयत्न किया था उसका तदनुरूपी बल
से प्राप्त होता है। जिस प्रकार आपका शरीर किनारे की ओर
उसी प्रकार यह बल निकास गैसों की संहृति को इंजन के पीछे की
है जो उनके बाहर निकलने का केवल मात्र रास्ता है। और ठीक
प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नाव विपरीत दिशा में हट गई थी उसी
रॉकेट को आगे की ओर धकेलता है और साथ में रॉकेट के साथ
भी आगे की ओर जाता है।

हम एक छोटे से रॉकेट को किसी कमानी तुला से बांध सकें तो हम
को पौंड-भार (pounds weight) में ज्ञात कर सकते हैं। अतः
किसी ऐसे जेट अथवा रॉकेट इंजन के 'धक्के' को, जो अपना कार्य
(reaction-propulsion) द्वारा करता है, प्रणोद-पौंडों
thrust) में व्यक्त किया जाता है।

यह याद रखना ज़रूरी है कि 'धक्का' और शक्ति दो भिन्न चीज़ें
धक्के) को चाल से गुणा करने पर शक्ति प्राप्त होती है; और
इंजन की तुल्य अश्वशक्ति (equivalent horsepower) को
समीकरण से मालूम कर सकते हैं :

$$\text{अश्वशक्ति} = \frac{\text{प्रणोद-पौंड} \times \text{चाल}}{375}$$

यदि ऐसा रॉकेट हो जो 6000 पौंड-प्रणोद उत्पन्न कर सके
वायुयान में फिट कर दिया जाय जो 500 मी.प्र.घं. की चाल से

$\frac{6000 \times 500}{375}$ अथवा 8000 अश्वशक्ति प्राप्त होगी।

हम कह चुके हैं अधिक ऊंचाइयों पर जेट-इंजन की शक्ति क्षीण
उसे दक्षतापूर्वक कार्य करने के लिये हवा से पर्याप्त ऑक्सी-
और जैसे-जैसे हवा विरल होती जाती है रॉकेट की
की चाल को कम करने वाला वायु-प्रतिरोध
जितनी तेज होती है शक्ति भी उतनी ही अधिक

वास्तव में रॉकेट अन्य स्थानों के बजाय अन्तरिक्ष में अच्छी तरह कार्य करता है जहाँ बिल्कुल हवा नही होती है।

दुर्भाग्यवश देखा गया है कि प्राय: प्रत्येक अवस्था में कुछ न कुछ कठिनाई होती है क्योंकि इंजीनियरी दुनिया में कुछ नही से कुछ प्राप्त करना असंभव है। रॉकेटों के साथ यह कठिनाई है कि उनमें बहुत अधिक ईंधन खर्च होता है। यहां तक कि 8000 पौंड प्रणोद उत्पन्न करने वाले अपेक्षाकृत छोटे वायुयान रॉकेट इंजन में भी आसानी से प्रति मिनट एक टन प्रणोदक जल जाता है।
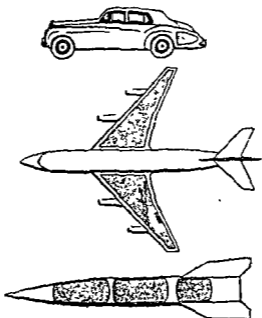
छायादार भाग मोटरकार, लम्बी परास वाले एअरलाइनर और रॉकेट के ईंधन अथवा प्रणोदक टंकियों को बतलाते हैं।

प्रणोद के बजाय शक्ति के शब्दों में सोचकर हमें एक बार फिर से इस बात पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करना चाहिए।

रॉकेट की मोटर अपेक्षाकृत एक सरल और संहत-शक्ति-संयंत्र (compact power plant) होता है जिससे हमारा 8000 पौंड-प्रणोद वाले रॉकेट का भार केवल 300 पौंड हो सकता है। तुलना में समान प्रणोद वाले जेट-इंजन का भार लगभग 2000 पौंड होगा। इंजन के भार में यह कमी ईंधन के भार की क्षतिपूर्ति करने में मदद करती है और इससे शीघ्र स्पष्ट हो जाता है कि जब अल्प-अवधियों के लिये अति उच्च शक्ति की आवश्यकता होती है तो अत्यधिक ईंधन खर्च होने के बावजूद रॉकेट की मोटर बहुत दक्ष (efficient) होती है।

जहाँ तक अन्तरिक्ष-उड़ान का सम्बन्ध है हम पढ़ चुके हैं कि अभी तक किसी न किसी प्रकार के रॉकेट मोटर के अतिरिक्त और कोई विकल्प नही है। उड़ने और उतरने के समय के अलावा ईंधन अधिक खर्च नही होता है। क्योंकि एक बार अन्तरिक्षयान को वायुमण्डल से परे पर्याप्त गति तक त्वरित कर देने

A turbojet engine often takes up more space than the fuel
टर्बोजेट इंजन ईंधन से अधिक स्थान घेरता है
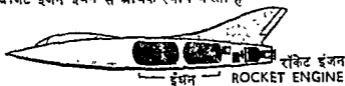
A small rocket engine needs a great deal of fuel
छोटे से रॉकेट इंजन को बहुत अधिक ईंधन की आवश्यकता होती है

के बाद कम शक्ति की आवश्यकता होती है। अब उसकी गति को कम करने वाला वायु-प्रतिरोध नहीं रहता है और उसे केवल पृथ्वी के लगातार घटते जा रहे गुरुत्व (gravity) के कर्षण की क्षतिपूर्ति करनी होती है जो उसे दूर अन्तराग्रहिक अन्तरिक्ष (interplanetary space) की गहराई से वापस पृथ्वी पर खींचने की कोशिश करता रहेगा।

## रॉकेट नये नहीं हैं

ऐसा लगता है कि आजकल के निर्देशित मिसाइल (guided missile) और भविष्य के अन्तरिक्षयान उन आतिशबाजी वाले सरल रॉकेटों से सर्वथा भिन्न हैं जिन्हें हम प्रसन्नतापूर्वक इंगलैंड में प्रत्येक वर्ष पांचवी नवम्बर को और यूनाइटेड स्टेट्स में प्रत्येक वर्ष की चौथी जुलाई को फेंकते हैं। फिर भी यह सब उस घटना का परिणाम है जो सैकड़ों वर्ष पहले, संभवतः चीन में हुई थी।

हमें रॉकेट के आविष्कार की सच्ची कहानी संभवतः कभी मालूम नहीं हो सकेगी। किन्तु हमें यह अवश्य मालूम है कि चीनी लोग तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही बारूद का उपयोग करने लगे थे। इसका क्या परिणाम निकला होगा यह अनुमान लगाना सरल है। संभवतः सबसे पहला रॉकेट अचानक ही बन पड़ा जबकि एक गृहनिर्मित (home-made) बम का, जो बारूद को मजबूत कागज की नली में पैक करने से बनाया गया था, विस्फोट नहीं हुआ और धीरे से एक सिरे पर जलकर भूमि के साथ-साथ धारियां (streaking) बनाने लगा था।

यदि उस समय कोई युद्ध छिड़ा होता तो बम बनाने वाले व्यक्ति ने निश्चय ही अपने नये खोजे गये चल-अग्नि बम (incendiary bomb) के बारे में सड़क पर आकर स्थानीय सेना कमांडर को कहा होता जो फ़ायर करने वाले आदमी को सुरक्षा सीमा के अन्दर रखे बिना ही उच्च गति से नोदन कर दुश्मन के कस्बे में पहुंच सकता था।

चीनी सैनिक एक रॉकेट को फायर कर रहा है

अगला उपयुक्त कदम यह होता कि कोई व्यक्ति उस अग्नि-बम को एक तीर से बांधने का सुझाव देता ताकि लक्ष्य (target) की ओर जाते समय उसके लम्बे पर उसे सीधे रास्ते में बनाये रखते। शीघ्र ही यह बात मालूम हो जाती कि विस्फोट के कारण परों के जल जाने पर भी बम सीधा जा सकता है और परिणामस्वरूप उपर्युक्त बम लम्बी छड़ी पर बने आधुनिक आतिशबाजी वाले रॉकेट से थोड़ा ही भिन्न होता।

चाहे हमारे अनुमान सही हों या गलत, किन्तु इस बात में कोई शक नहीं कि इस प्रकार के रॉकेट सन् 1232 में मौजूद थे जबकि मंगोल हमलावरों को सुनिर्देशित रॉकेटों की सहायता से पीपिंग (Peiping) शहर से भगा दिया गया था।

चीन से युद्ध-रॉकेटों को बनाने की तकनीक सर्वप्रथम भारत में फैली और उसके बाद सेरासेन (Saraccn) राज्य से होते हुए यूरोप मे फैल गई किन्तु बाद की शताब्दियो में तोपों (cannon) और छोटे-छोटे अस्त्रों के विकास के साथ-साथ रॉकेटों को कम पसन्द किया जाने लगा क्योंकि वे नई बन्दूकों से कम यथार्थ थे। इसलिये सन् 1780 में भारत में अंग्रेज सैनिकों को एक अरुचिकर आश्चर्य हुआ होगा जब उनके पुराने दुश्मन मैसूर निवासी हैदर अली ने गुण्टूर मे लोह आवरण (iron case) वाले रॉकेटों का उपयोग किया था जिनमें से प्रत्येक का भार 12 पौंड और परास आधा मील था। सैकड़ों की संख्या में फ़ायर करने से उसको अस्थायी विजय प्राप्त हुई जिसने इंगलैंड में रॉकेट-तोपखाने (artillery) के लिये फिर से रुचि पैदा कर दी।

इसके बाद हुई प्रगति का श्रेय मुख्य रूप से कर्नल (बाद में सर) विलियम कंग्रीव (William Congreve) को है। वह तोपखाने का विशेषज्ञ था और उसे वूलविच (Woolwich) मे स्थित रॉयल प्रयोगशाला में युद्ध सम्बन्धी रॉकेटों के डिज़ायन तैयार करने और उनका उत्पादन करने का आदेश दिया गया था। वह एक प्रभावशाली और चतुर आविष्कारक रहा होगा क्योंकि जब सन् 1806 मे

नेपोलियन सम्बन्धी युद्धों के दौरान नेवो बाउलोन (Boulogne) के लिये रवाना हुई तो उसके पास 24 'प्रक्षेपित्र' जहाज़ों का बेड़ा था जो विशेष रूप से कंग्रीव रॉकेटों को फ़ायर करने के लिये बनाये गये थे।

जल्दी ही इन मिसाइलों की बड़ी-बड़ी तोपें (slavoes) शहर में और फ्रांसिसी बेड़े की यूनिटों में मार करने लगीं। इसके परिणाम बड़े विनाशकारी साबित हुए क्योंकि रॉकेटों के नुकीले सिरे थे और जब ये नुकीले सिरे लकड़ी के आवरण वाले जहाज़ों और इमारतों से टकराते थे तो गोलाई में स्थित छिद्रों में से अग्निवत् (fiery) द्रव निकल आता था जो लक्ष्य को सैकंडों में ज्वालामय कर देता था।

बाउलोन दुश्मन के हाथ पड़ गया और अगले वर्ष कोपेनहेगन में 25000 कंग्रीव रॉकेटों की मार पड़ी। उनमें से कुछ अग्निसिर वाले, कुछ विस्फोटक पदार्थ वाले, और कुछ दोनों प्रकार के मिले-जुले थे। प्रत्येक का भार 32 पौंड और परास 2 मील तक था। वे पहले के आतिशबाज़ी बमों से सर्वथा भिन्न थे और सेना इन रॉकेटों से इतनी प्रभावित हुई कि उसने एक विशेष रॉकेट-ब्रिगेड बना लिया जिसने सन् 1815 में वाटरलू में भाग लिया।

बाल्टिमोर (Baltimore) में सन् 1814 में जब अमरीकियों के विरुद्ध इस प्रकार के मिसाइलों का उपयोग किया गया तो वे भी इनसे प्रभावित हुए होंगे, क्योंकि उनके राष्ट्रीय गीत में 'रॉकेटों की लाल चमक' का संकेत है। कंग्रीव रॉकेट हालांकि उपयोगी थे, किन्तु वे आधुनिक मानकों के अनुसार उत्तम नहीं थे। कम दक्षता वाले एक काले पाउडर को जलाने से उनका नोदन किया जाता था और उनकी उड़ान अस्थायी थी जिससे उनकी यथार्थता कम हो जाती थी।
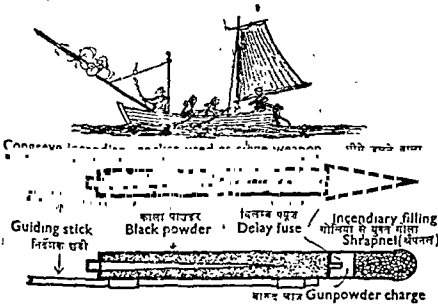
Congreve shrapnel rocket used against troop concentrations
सैनिक जमाव के विरुद्ध प्रयुक्त कंग्रीव श्रैपनेल रॉकेट

रॉकेट से बंधी बचाव-रस्सी

लम्बी लकड़ियों की जगह स्थायित्वकारी परों (fins) का उपयोग करने से यथार्थता बढ़ गई। यह सुझाव सर्वप्रथम फ्रेज़ियर (Frezier) नामक फ्रांसिसी ने दिया। तत्पश्चात् सन् 1815 में अमेरिका में परों द्वारा स्थायीकृत रॉकेट का आविष्कार किया गया जिसकी यथार्थता और भी अधिक थी। इसमें कुछ निकास गैसों को मुख्य निकास मार्ग के चारो ओर एक कोण पर झुके गोलाई में स्थित छोटे-छोटे तुडों (nozzles) में से निकाला जाता था जिससे पूरा रॉकेट उसी प्रकार घूमने लगता था जिस प्रकार किसी बन्दूक की नाल में झिरी काटने (rifling) से गोली घूमने लगती है जिससे वह सीधे उड़ सके।

1840 से 1849 के दौरान रॉकेट आधुनिक बज़ूका (bazooka) सदृश नालियों से फ़ायर किये जाने लगे थे। बीस साल बाद विलियम हैले का भ्रमि-स्थायीकृत रॉकेट (spin-stabilized rocket) ब्रिटिश और अमेरिकन दोनों सेनाओं का मानक उपकरण बन गया था : किन्तु रूढ़ तोपखाने (conventional artillery) के विकास के लिये उससे भी अधिक काम किया जा रहा था और युद्ध के अस्त्र के रूप में रॉकेट के प्रति लोगों की रुचि एक बार फिर क्रमशः कम होने लगी थी। दूसरे कामों के लिये उसकी उपयोगिता की केवल शुरुआत थी।

चीन वाले जबसे युद्ध में रॉकेटों का उपयोग करने लगे तभी से वे सिगनल करने के लिये रॉकेटों के महत्त्व को महसूस करने लगे थे। रॉकेटों में छोटे-छोटे बोझ बांधकर एक आदिम वायु-वाहन-सेवा (primitive air freight service) चलाने के लिये कई देशों में शताब्दियों से प्रयत्न हो रहे थे। इससे उनकी यथार्थता औरभी घट गई। प्रायः यह निश्चित करना आवश्यक था कि गट्ठर ठीक व्यक्ति के पास पहुंचे। इस दिशा में सन् 1807 तक कोई प्रगति न हो सकी जबकि हैनरी

ट्रेंग्राउज (Henry Trengrouse) नामक कार्नवाल-निवासी ने रॉकेट के अन्त में एक छोटी डोरी बांध दी और इस प्रकार उसने मुसीबत में पड़े जहाजों में बचाव-रस्सी (life-line) ले जाने के एक नये तरीके का आविष्कार किया। रॉकेट द्वारा जलयान पर फेंकी गई रस्सी को पकड़कर मल्लाह एक भारी रस्से को खींचते थे और इस तरह सुरक्षित स्थान पर पहुंच जाते थे।

सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उस समय के रॉकेटों की शक्ति कम थी और वे कम समय तक जलते थे। इस समस्या का हल फ्रांसनिवासी फ्रेजियर ने ढूंढ़ निकाला। उसने सुझाया कि रॉकेटों को एक के बाद एक करके रखा जाये ताकि जैसे ही पहला जल चुके वह आगे के रॉकेट को जला दे जिससे परास बढ़ जाये। इस व्यवस्था को हम अब बहु-पद अथवा स्टैप रॉकेट (step rocket) कहते हैं।

सन् 1855 में अपना प्रसिद्ध द्वि-पद बचाव-रस्सी रॉकेट बनाने में कर्नल बॉक्सर ने फ्रेजियर के विचारों का उपयोग किया। उसमें एक ही नली में दो साधारण पाउडर-चार्जो को कुछ शीघ्र जलने वाले पाउडर-चार्जों से पृथक् किया गया था। इस रॉकेट ने बहुत अच्छा काम किया तथा वह उस समय समुद्रतटों पर प्रयुक्त मैनबाई (Manby) मॉर्टर से अधिक सुसहत और परिवहनीय था। 1870 तक इंगलैंड के प्रत्येक प्राण-रक्षक (life-saving) स्टेशन में बॉक्सर रॉकेटों का उपयोग होने लगा। इनमें से प्रत्येक का भार केवल 6 पौंड था और वे आधे इंच परिधि की 1000 फुट से अधिक लम्बी सन की रस्सी लेजा सकते थे। इस प्रकार के रॉकेट का आज भी सारे ससार में उपयोग होता है।

यद्यपि ठीक-ठीक आंकड़े प्राप्त नही है किन्तु प्राण-रक्षक रॉकेटों ने इगलैंड के समुद्रतट पर कुल 15000 से भी अधिक लोगों को बचाने में मदद की है। अत: रॉकेट पूर्णतया विनाशकारी ही नही होते हैं।

अगली महत्त्वपूर्ण प्रगति रूस में हुई जबकि सन् 1881 में निकोलाइ किब्राल्चिच (Nikolai Kibaltchitch) ने आदिम (primitive) रॉकेट-शक्ति वाले वायुयान का डिजायन तैयार किया। आविष्कारक के रूप में वह पहले से प्रसिद्ध था। उसने जार अलेक्जेंडर द्वितीय (Tsar Alexander II) को नष्ट करने (blow up) के लिये इस्तेमाल किये गये बमों का डिजायन तैयार कर उन्हें बनाया था। जेलखाने में फांसी की प्रतीक्षा करते हुए उसने अपने वायुयान का डिजायन तैयार किया था। उसके कार्य का एकाएक अन्त हो गया और सोवियत रूस में अन्तरिक्ष उड़ान के पायनियर के रूप में किबाल्चिच को नही बल्कि कोन्सतान्तिन सिओलकोवस्की (Konstantin Tsiolkovsky) को सम्मान दिया जाता है।

सिओलकोवस्की ने सन् 1903 में ही यह मालूम कर लिया था कि रॉकेट निर्वात में भी कार्य कर सकता है। उसने अन्तरिक्षयान का एक मॉडल तैयार किया। कुछ वर्ष बाद फ्रांस में रॉबर्ट एसनौल्ट-पेल्टेरी (Robert Esnault-Pelteric) ने अपना कुछ समय धारारेखित मोनोप्लेनों (streamlined
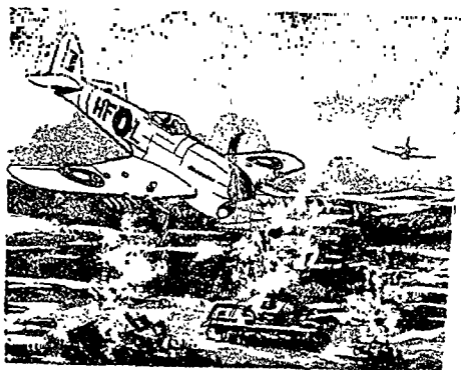
द्वितीय विश्वयुद्ध में ज़मीन में स्थित टार्गेटों के विरुद्ध लड़ाकू विमानों से ठोस प्रणोदक अनिर्देशित रॉकेट फ़ायर किये गये थे

monoplanes) को बनाने और कुछ अन्तरिक्ष-यात्रा की गणितीय संभावनाओं (mathematical possibilities) का अन्वेषण करने में लगाया। अमेरिका में रॉबर्ट गोडार्ड (Robert Goddard) नामक वैज्ञानिक रॉकेट के नये ईंधन की खोज करने लगा।

प्राप्त परिणामों से रॉकेट का डिजायन तैयार करने में एक नया मोड़ आरम्भ हुआ। क्योंकि 1920 के बाद 34 वर्षों में गोडार्ड ने मालूम किया कि वायुमण्डल से परे उड़ान करने के लिये पर्याप्त शक्ति पैदा करने का एकमात्र तरीका पिछली सात शताब्दियों से भी अधिक समय से प्रचलित पाउडर-ईंधनों के स्थान पर द्रव ऑक्सीजन जैसे द्रव-प्रणोदकों का उपयोग करना है।

द्रव-प्रणोदकों से चलने वाली मोटरों को बनाने में उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। उसे साधारण आतिशबाजी वाले रॉकेटों के स्थान में एक मज़बूत फ़ायर-कक्ष (fire chamber), द्रव ऑक्सीजन और पेट्रोल-प्रणोदकों के लिये टंकियों, प्रणोदकों को फ़ायर-कक्ष में भेजने के लिये पम्पों, उन्हें जलाने के लिये एक प्रज्वलन तंत्र (ignition system) तथा वाल्वों और नियंत्रकों की आवश्यकता पड़ी। द्रव ऑक्सीजन को दाब पर रखने के कारण उसका कार्य और भी कठिन हो गया था क्योंकि यदि उसका ताप $-183^{\circ}$ C से बढ़ने दिया जाता तो वह उबलकर उड़ गई होती।

आर्थिक सहायता के रूप में स्मिथसोनियन संस्था (Smithsonian Institution) से उसे 5000 डालर का अनुदान मिला जिसकी मदद से उसने 1923 में एक छोटी-सी मोटर खरीदी जिसने जाँच-बेंच (test-bench) पर संतोषपूर्वक कार्य किया। 3 वर्ष बाद 16 मार्च 1926 को द्रव-प्रणोदक से चलने वाले रॉकेट की प्रथम जाँच-उड़ान के लिये पूर्ण तैयारी की गई। वह आज के भीमकाय धारा रेखित (streamlined) मिसाइल से बिल्कुल भिन्न दिखाई देता था। यथासम्भव हल्का और सरल बनाने के लिये गोडार्ड ने उसे ढांचे (skeleton structure) के रूप में बनाया जो करीब 10 फ़ुट लम्बा था। उसमें एक बहुत बड़ी द्रव ऑक्सीजन टंकी और अपेक्षाकृत छोटी पेंट्रोल टंकी थी जो पतली पाइपलाइनों के द्वारा फ़ायर-क्षक से जुड़ी थी।
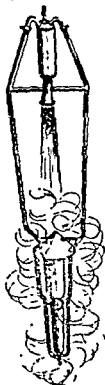
गोडार्ड का पहला द्रव-प्रणोदक रॉकेट

मैसाचुसेट्स (Massachusetts) में ऑबर्न नामक स्थान पर एक फ़ार्म के ऊपर एक साधारण ढांचे से छोड़े गये इस दुर्बल (frail-looking) रॉकेट ने 60 मी.प्र.घं. की चाल से 184 फ़ुट की दूरी तय की। वह केवल 2½ सेकंड तक हवा में रहा जो संभवत: आजकल बहुत चमत्कारपूर्ण न लगे। किन्तु यह केवल आरम्भ था और शीघ्र ही गोडार्ड बड़े, अधिक अच्छे तथा धारारेखित रॉकेटों को बनाने में लग गया।

वायुयान उड़ान के आरम्भिक पायनियरों (pioneers) की भाँति गोडार्ड को भी प्रेस और जनता की ओर से बहुत कम प्रोत्साहन मिला। सन् 1919 में जब उसने 'A Method of Reaching Extreme Altitudes' नामक

तकनीकी पेपर में अन्तरिक्ष-यात्रा का हवाला दिया तो अखबारों ने उसे पागल बताया। सन् 1926 में किये गये प्रयोगों के बाद घोषित किया गया कि वह सार्वजनिक सुरक्षा के लिये खतरा है और उसको मैसाचुसेट्स में अन्य रॉकेट छोड़ने के लिये मना कर दिया गया।

बहुत कम अमेरिकन गोडार्ड द्वारा किये गये कार्य के महत्त्व को समझते थे। उनमें से एक अटलांटिक के ऊपर उड़ने वाला चार्ल्स लिंडबर्ग (Charles Lindbergh) था। उसने धनी डेनियल गुगेनहीम (Daniel Guggenheim) से आगे के प्रयोगों के लिये 25000 डालर देने का आग्रह किया। परिणामस्वरूप सन् 1935 तक 85 पौंड भार का रॉकेट बनाया गया जिसकी लम्बाई 15 फुट थी। वह 7500 फट ऊपर उड़ा और उसकी चाल 700 मी.प्र.घं. थी। किन्तु उस समय तक यूरोप में इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण घटनायें घट रही थी।

सन् 1922 में गोडार्ड को रूमानिया के प्राध्यापक हरमन्न ओवर्थ (Hermann oberth) का एक पत्र मिला जिसमें उस पेपर की एक प्रति भेजने को कहा गया था जो गोडार्ड ने तीन वर्ष पहले लिखा था। उसके बाद ओवर्थ ने 'The Rocket into Interplanetary Space' नामक पुस्तक को विस्तारपूर्वक लिखा जो शीघ्र ही अन्तरिक्ष उड़ान की बाइवल वन गई अथवा उसे खगोलयानिकी (science of astronautics) नाम देना उपयुक्त होगा।

इस पुस्तक की मुख्य बिक्री जर्मनी में थी जहाँ 1914-18 के विश्वयुद्ध के अन्त में हुई शान्ति-संधि की शर्तों के अनुसार उड़ान करने पर इतना प्रतिबन्ध था कि नवयुवक वैज्ञानिकों और डिजायनरों ने रॉकेट विज्ञान की नई और उत्तेजक समस्याओं को हल करने के मौके का स्वागत किया। उनके एक दल ने जून सन् 1927 में 'Verein fur Raumschiffahrt' (VfR) नामक एक सोसाइटी बनाई जो खगोलयानिकी के प्रत्येक पहलू का पूर्ण लगन से अध्ययन करने लगी और एक साल के अन्दर इस सोसाइटी की सदस्य-संख्या 500 से भी अधिक हो गई। ओवर्थ भी इसका सदस्य था।

सबसे पहले उन लोगों ने मोटरकारों और ग्लाइडरों का नोदन करने और पर्वतीय इलाकों में डाक भेजने के लिये आतिशबाज़ी जैसे रॉकेटों के उपयोग पर कार्य किया। सन् 1930 के बाद ही उन्होंने मुख्यतः *ओवर्थ के सिद्धान्तों* पर आधारित द्रव-प्रणोदकों से चलने वाले डिज़ायनों पर प्रयोग करना आरम्भ किया। सम्भवतः इसमें उन्हें आशातीत सफलता मिली क्योंकि सन् 1933 में जब उनमें से एक रॉकेट का जर्मन सेना के अफ़सरों के सम्मुख प्रदर्शन किया गया तो गेस्टापो (Gestapo) ने VfR को बन्द कर दिया और सैनिक शस्त्र विभाग ने वर्लिन के दक्षिण में कुमर्सडॉर्फ (Kummersdorf) नामक स्थान में एक गुप्त सैनिक रॉकेट अनुसंधान प्रतिष्ठान की स्थापना की।

कुमर्सडॉर्फ को मेजर-जनरल वाल्टर डॉर्नबर्जर (Walter Dornberger) के कमान में रखा गया और VfR के सर्वाधिक कुशल सदस्य 20-वर्षीय वर्नर फ़ॉन ब्राउन (Wernher von Braun) को मुख्य डिज़ाइनर नियुक्त किया

गया। रॉकेट-इतिहास में पहली बार अनुसंधान के लिये पर्याप्त धन उपलब्ध हुआ और अत्यधिक सफलता मिलने की सम्भावना बढ़ गई।

सन् 1934 में द्रव-प्रणोदकों से चलने वाला रॉकेट, जिसका कूट-नाम A-2 था, 6500 फुट की ऊँचाई तक पहुंचा। उसके द्वारा तय की गई दूरी से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि एक पुच्छ नियंत्रण पृष्ठों का प्रचालन करने वाले जाइरोस्कोप (gyroscope) की मदद से उसका रास्ता सीधा रखा गया था। यह मार्ग का बहुत अधिक यथार्थता के साथ संकेत करता था।

तीन वर्ष बाद सम्पूर्ण प्रतिष्ठान को जासूसों से दूर बाल्टिक तट पर स्थित पीनीमुंडी (Peenemunde) गाँव में ले जाया गया और सन् 1939 में जब इस नये बेस से एक A-5 नामक रॉकेट छोड़ा गया तो उसने 11 मील की दूरी तय की। इससे पहले परीक्षण किये गये रॉकेटों से इसकी लम्बाई कहीं अधिक यानी 25 फुट और भार 1650 पौंड था और उसकी उड़ान को गरम निकास गैसों द्वारा प्रचलित छोटे-छोटे पिच्छफलकों (vanes) से स्टियर किया गया था। उड़ान आरम्भ करते समय जबकि पिछले हिस्से के पखों (tail-fins) के प्रभावपूर्ण न होने के कारण रॉकेट तेज नही उड़ता है और ऊँचे स्थानों में जहाँ हवा के विरल होने के कारण साधारण नियंत्रक काम नही कर सकते है इन पिच्छफलकों की मदद से अधिक अच्छा नियन्त्रण करने में सफलता मिली।
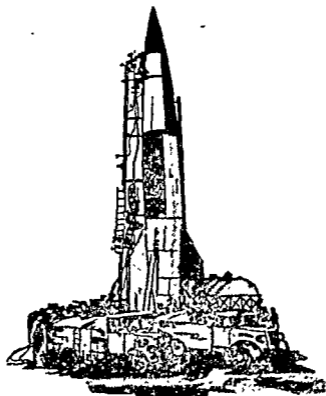
A-4 (V-2) रॉकेट को ईंधन दिया जा रहा है

इस बीच A-2 से प्राप्त संभावनाओं से प्रभावित होकर जर्मनी की सेना ने डॉर्नबर्जर को शीघ्र एक ऐसा रॉकेट बनाने का काम सौंप दिया जिसका परास 150 मील से अधिक हो और जो पर्याप्त यथार्थता के साथ एक टन विस्फोटक वारहेड (warhead) को पहुंचा सके। अनगिनत समस्याओं और असफलताओं का सामना करते हुए सितम्बर 1939 के बाद उन्होने और भी अधिक तत्परता से काम किया जब जर्मनी एक बार पुन: युद्ध के मैदान में था।

आंशिक सफलताओं के बाद 3 अक्टूबर 1942 को पहली बार नये रॉकेट का पूरे पैमाने पर परीक्षण करने के लिये पूरी तैयारी कर ली गई थी। वह एक अविस्मरणीय दृश्य था जबकि 46 फुट लम्बा और 12 टन से अधिक वज़न का भीमकाय मिसाइल फ़ायर-पैड (firing pad) से ऊपर को उठा और पहले धीरे-धीरे तथा बाद में तेज़ी से ऊपर को चढ़ता गया और अन्त में उसकी गति 3000 मी.प्र.घं. हो गई।

उस दिन पहली बार एक रॉकेट ने 100 मील से अधिक दूरी तय की। वह रॉकेट किसी दृष्टि से भी आदर्श रॉकेट नही था और A-4 को युद्ध के शस्त्र के रूप में इस्तेमाल करने के लिये 2 साल और लगे और इस बीच उसके 65000 डिज़ाइन बदले। किन्तु जब पहला A-4 (अथवा V-2 जिस नाम से हम इसको उस समय जानते थे) 8 सितम्बर 1944 को लंदन में चिस्विक (Chiswick) नामक स्थान पर गिरा तो उससे नये प्रकार के युद्ध का श्रीगणेश हो गया जिसे वायुयानों और टैंकों में लड़ने वाले आदमियों के बजाय वैज्ञानिकों ने दाब-बटनों (push-buttons) और संगणकों (computors) से आरम्भ किया।

मानव के लिये इससे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि यह अन्तरिक्ष के अन्वेषण की दिशा में एक बहुत बड़ा कदम था।

## प्रणोदक और कार्य-सम्पादन

रॉबर्ट गोडार्ड ने रॉकेट-अनुसंधान और प्रयोग के अपने तीस वर्षों में 71300 पौंड से अधिक खर्च नही किये जबकि जर्मनो के युद्धकालीन V-2 को बनाने में लाखों पौंड की आवश्यकता पड़ी। इसके अलावा इगलेंड के खिलाफ फ़ायर किये गये प्रत्येक रॉकेट पर 10000-16000 पौंड अतिरिक्त खर्च करना पड़ा था। इसका मुख्य कारण यह था कि V-2 में लगभग 30000 पृथक् हिस्से थे। फिर भी आजकल के लम्बे परास वाले रॉकेटों को अपेक्षा आदिम निर्देशन-तन्त्र वाला रॉकेट बहुत सरल था और कहा जाता है कि नाभिकीय वारहेड (nuclear warhead) के बिना ही अमेरिका के भीमकाय एटलस अन्तरमहाद्वीपीय प्राक्षेपिक मिसाइलों यानी आई.सी.बी.एम. (Atlas Intercontinental Ballistic Missiles i.e. ICBMS)की कीमत पांच लाख पौंड से भी अधिक है।

यदि हम रॉकेटों द्वारा किये जाने वाले कार्य का अध्ययन करें तो यह मालूम करना आसान होगा कि वे क्यों और कैसे इतने जटिल और कीमती हैं।

आरम्भ में चीनियों द्वारा और बाद में सारे संसार में सैनिकों द्वारा प्रयुक्त रॉकेट लम्बी दूरियों को तय करने अथवा भारी वारहेड (warhead) ले जाने के लिये नही बनाये गये थे। बारूद जैसे प्रणोदक बिल्कुल उपयुक्त थे और मुख्य समस्या यह निश्चित करने की थी कि ये एक समान और स्थायी रूप से जलें।

बहुधा बारूद एक ओर की अपेक्षा दूसरी ओर तेजी से जल जाता था जिससे रॉकेट उसी ओर घूम जाता था जिस ओर बारूद का भार अधिक रह जाता था। लकड़ी को बांधने से रॉकेट का इस प्रकार हटना बन्द हो गया क्योंकि जब रॉकेट घूमने लगता था तो उस पर इतना खिचाव पड़ता था कि वह शीघ्र ही वापस सीधी रेखा में आ जाता था।

बारूद को शंकु के आकार में खोखला करने से वह अधिक समान रूप से जलने लगा और शक्ति भी अधिक प्राप्त हुई जिससे जल्दी ही बारूद के अधिक क्षेत्र में आग लग जाती थी। इस सरल सिद्धान्त को अब भी आतिशबाज़ी वाले रॉकेट में इस्तेमाल किया जाता है। किन्तु यह द्वितीय विश्वयुद्ध में वायुयानों से ज़मीन पर स्थित लक्ष्यों के विरुद्ध फ़ायर किये गये ठोस-प्रणोदकों से चलने वाले रॉकेटों के लिये उपयुक्त नहीं था क्योंकि उसके लिये तेज़ चाल वाले और लम्बी परास वाले रॉकेटों की आवश्यकता थी। इसलिये अमेरिका के 12-इंची टिनी टिम रॉकेट (Tiny Tim rocket) का अधिकतम ज्वलन क्षेत्र सुनिश्चित करने के लिये गोलाकार हिस्से के बजाय स्वस्तिकाकार हिस्से (cruciform section) के साथ ठोस-प्रणोदक की चार पृथक् छड़ें सांचे में डाली गई थीं।
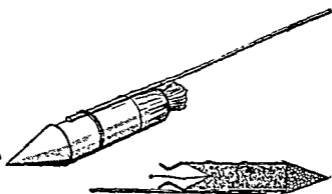
आतिशबाज़ी-रॉकेट जिसमें खोखला किया गया चार्ज और वेन्चुरी तुंड दिखाया गया है

यदि प्रणोदक के बहुत बड़े क्षेत्र को शीघ्र जलने दिया जाय तो उपर्युक्त व्यवस्था के फलस्वरूप निकास गैस की पर्याप्त मात्रा शीघ्र से उत्पन्न होती है और यदि समान भार के प्रणोदक की एक ही छड़ को पीछे से आगे की ओर जलाया जाय तो इससे मिलने वाली निकास गैस उतनी तीव्रता से उत्पन्न नहीं होती है। किन्तु यही उच्च कार्य-निष्पन्नता की गारंटी नहीं है क्योंकि यदि गैसें रॉकेट के पिछले हिस्से में स्थित तुंड से उच्च गति से निष्कासित न होतीं तो वे खोल (casing) को उड़ा देतीं। अतः गैसों को बाहर निष्कासित करना बहुत-कुछ तुंड के उपयुक्त डिजायन पर निर्भर करता है।

यदि आप छोटे आतिशबाजी वाले रॉकेट को देखें तो आप पायेंगे कि गत्ते का खोल पिछले भाग में जुड़ा होता है जिससे गैसें खोल के व्यास की अपेक्षा बहुत छोटे छिद्र से निकल जाती हैं। संकीर्ण करने की इस क्रिया को वेन्चुरी (ventury) कहते हैं और इसका निष्कासित होने वाली गैसों की गति पर असर पड़ता है। फलस्वरूप सभी रॉकेटों में, चाहे वे ठोस-प्रणोदक वाले हों अथवा द्रव-प्रणोदक वाले, एक वेन्चुरी आकार का तुंड होता है।

अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि रॉकेट का कार्य-सम्पादन उस गति पर निर्भर करता है जिससे निकास गैसें तुंड से बाहर निकलती हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से सर्वोतम प्रणोदक वह है जो यथासम्भव अधिक से अधिक आयतन उत्पन्न करता है। मोटे तौर पर यदि गैसों के निष्कासित होने की गति (यानी निकास-वेग) को दूना कर दिया जाय तो रॉकेट की गति भी दूनी हो जाती है। और रॉकेट की गति जितनी तेज होगी ईंधन के जल चुकने के बाद वह उतना ही अधिक आगे बढ़ेगा। इसलिये तय की गई दूरी गति के अनुक्रमानुपाती (directly proportional) होती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सन् 1923 में रॉबर्ट गोडार्ड ने द्रव-प्रणोदकों को क्यों अपनाया और क्यों उसके बाद बनाये गये लगभग सभी लम्बी परास वाले युद्ध-रॉकेटों में द्रव-प्रणोदकचालित मोटर लगाये गये। क्योंकि ऐसे प्रणोदक पुराने फैशन के बारूद के समान ठोस-प्रणोदकों की अपेक्षा तीव्रगामी निकास गैसों के रूप में बहुत ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। कार्य-सम्पादन में यह वृद्धि इतनी अधिक होती है कि द्रव-प्रणोदक रॉकेट की अधिक जटिलता और अधिक कीमत से सम्बन्धित दोष का परिमार्जन हो जाता है।

आगे बढ़ने से पहले आइये हम आजकल रॉकेटों में प्रयुक्त होने वाले प्रणोदकों पर गौर करें। ईंधन और ऑक्सीजन की सप्लाई के लिये कोई उपचायक (oxidant) आवश्यक होता है। उपचायक से ईंधन जलाया जाता है। गोडार्ड ने आरम्भ में पेट्रोल को ईंधन के रूप में और द्रव ऑक्सीजन को उपचायक के रूप में इस्तेमाल किया। V-2 में ईंधन के रूप में ऐल्कोहॉल का और उपचायक के रूप में द्रव ऑक्सीजन का इस्तेमाल किया गया। एटलस रॉकेट में, जिसने अमेरिका के मानवयुक्त मर्करी अन्तरिक्षयान को कक्षा में छोड़ा, मिट्टी के तेल और द्रव ऑक्सीजन का उपयोग किया गया। सैटर्न-5 नामक अन्तरिक्षयान में, जिसका उपयोग अमेरिकन अन्तरिक्ष-यात्रियों को चन्द्रमा तक की लम्बी यात्रा पर भेजने के लिये किया जाता है, बाद की अवस्थाओं में द्रव हाइड्रोजन नामक एक नया 'अत्युत्तम ईंधन' इस्तेमाल होता है, जिसकी कार्य-सम्पादन-शक्ति पेट्रोल और मिट्टी के तेल से बहुत अधिक है।

किन्तु उच्च दक्षता वाले नये प्लास्टिक बेस (plastic base) यौगिकों के विकास के फलस्वरूप छोटे रॉकेट में ठोस-प्रणोदकों की मांग फिर से बढ़ती जा रही है। ठोस-प्रणोदकों के लाभ स्पष्ट हैं क्योंकि द्रव हाइड्रोजन, द्रव ऑक्सीजन तथा नाइट्रिक अम्ल आदि वैकल्पिक उपचायक और एच.टी.पी.

(हाइड्रोजन परॉक्साइड) का संग्रह और इस्तेमाल करना अपेक्षाकृत कठिन और अरुचिकर है जबकि ठोस-प्रणोदकों से चालित मोटरों को प्रायः अन्य ज्वलन-शील भंडारों की भांति ही इस्तेमाल किया जा सकता है। ठोस-प्रणोदक विशेष-रूप से सशस्त्र सेनाओं के लिये उपयोगी हैं क्योंकि उनके उपयोग से मिसाइल बहुत कम समय में ही तैयार हो जाता है जबकि द्रव-प्रणोदकचालित रॉकेटों को फ़ायर करने से पहले ईंधन देने और जांच करने में पन्द्रह मिनट से लेकर कई घंटे तक लग जाते हैं। इससे भी अच्छा यह है कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें तत्काल रोका जा सकता है।

द्रव-प्रणोदक इंजनों के डिजाइन बनाने वालों ने 'पूर्ववेष्टित' (pre-packaged) अथवा संग्रहणीय द्रव-प्रणोदक इंजन के रूप में ठोस-प्रणोदकों का विकल्प प्रस्तुत किया है। जैसा कि इस नाम से स्पष्ट है यह एक स्वय-पूर्ण शक्ति संयंत्र है जिसकी ईंधन टंकियां और ईंजन एक ही सीलबंद 'पैकेज' में रहते हैं। उसे मिसाइल में एक स्थान पर रखा जा सकता है और ठोस-प्रणोदक मोटर की भांति उसे तुरन्त इस्तेमाल किया जा सकता है। इस प्रकार के इंजनों का अमेरिका में हवा से भू-पृष्ठ पर और हवा से हवा में मार करने वाले अपेक्षाकृत छोटे शस्त्रों में इस्तेमाल होता है। इन इंजनों की कार्य-सम्पादन शक्ति उसी आकार के ठोस मोटरों से अधिक होती है।

यही एकमात्र ऐसी विधि नहीं जिससे रॉकेट बनाने वाले नये 'पैकेज' में प्रणोदकों की प्रचलित किस्मों का उपयोग कर रहे हैं। अनेक कम्पनियाँ ठोस और द्रव-प्रणोदकों के सम्मिश्रण (combination) का उपयोग कर संकर इंजनों (hybrid engines) के साथ प्रयोग कर रही हैं। उनका दावा है कि इससे दोनों प्रणोदकों के लाभ प्राप्त होते हैं और अधिकांश हानियां नहीं होती हैं।

कैलिफ़ोर्निया स्थित यूनाइटेड टेक्नोलॉजिकल सेण्टर में निर्मित और परीक्षित एक विशेष संकर इंजन 15½ फ़ुट लम्बा है। उसमें ऑक्सीकारक के रूप में द्रव फ़्लुओरीन/ऑक्सीजन की एक गोल टंकी होती है जो लीथियम/लीथियम हाइड्राइड/पॉलिब्यूटाडीन ठोस-प्रणोदक के सिलिंडर के ऊपर आरूढ़ रहती है। इंजन के निचले सिरे पर एक दहन-कक्ष होता है। उसमें ईंधन और ऑक्सी-कारक के अलग-अलग होने के कारण स्वतः कोई नहीं जल सकता है। इस व्यवस्था से लम्बे संग्रह-काल में उच्च ऊर्जा वाले प्रणोदकों का पूरी सुरक्षा के साथ उपयोग किया जा सकता है। इसे आसानी से रोका व दुबारा आरम्भ किया जा सकता है। टंकी से ठोस-प्रणोदक की टंकी में बहने वाले ऑक्सीकारक की सप्लाई को नियंत्रित करने के लिये थ्रॉटल की सहायता से प्रणोद में परि-वर्तन भी आसानी से किया जा सकता है।

यह विशेष यू.टी.सी. संकर इंजन 35 सैकंड तक 8000 पौंड प्रणोद उत्पन्न करता है। ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार के इंजनों के उपयोग से प्राय-भार तिगुने से भी अधिक हो जायेगा जिसे, अमेरिका के अनेक मानक अन्तरिक्ष-

यानों जैसे डेल्टा (Delta), एटलस सेण्टॉर (Atlas Centaur) और टाइटन-सेण्टॉर (Titan Centaur) द्वारा कक्षा में रखा जा सकता है।

रॉकेट मे चाहे ठोस-प्रणोदकों का उपयोग किया जाय या द्रव प्रणोदकों का उसकी कार्य-सम्पादन शक्ति (performance power) पर एक जैसे मूल-सिद्धान्त लागू होते हैं। इसलिये इन सिद्धान्तों के बारे में अधिक मालूम करने के लिये आइये हम पहले विशाल आधुनिक रॉकेट जर्मन V-2 को गौर से देखें।

चित्र में, V-2 के प्रमुख हिस्से दिखाये गये हैं।

उसमें सबसे आगे फ़्यूज़ और उपयोगी भार (payload) स्थित था जिसमें एक टन विस्फोटक पदार्थ रखा था। उसके बाद नियंत्रण-कक्ष था, जिसमें ऊर्ध्वाधर आरम्भिक उड़ान के बाद रॉकेट को लक्ष्य की ओर मोड़ने और उड़ान के दौरान उसे अपरिवर्ती (steady) रखने के लिये जाइरोस्कोप और प्रणोदक की सप्लाई को बन्द करने की एक युक्ति थी। यह सप्लाई तब बन्द की जाती है जब रॉकेट इतनी गति प्राप्त कर ले कि वह उसे लक्ष्य तक ले जाने के लिये पर्याप्त हो। नियत्रण-कक्ष के ठीक पीछे उन दो बड़ी टंकियों में से एक टंकी थी जिसमें प्रणोदक (लगभग 3½ टन ऐल्कोहॉल ईंधन) रखा था। इसके पीछे दूसरी टंकी थी जिसमें 5 टन द्रव ऑक्सीजन (उपचायक) रखा था।

पिछले परों के अगले किनारे के समतल पर टरबाइन और ईंधन-पम्प रखे थे जो प्रणोदक को ठीक अनुपात में दहन-कक्ष मे पम्प करते थे। दो अन्य द्रवों हाइड्रोजन परॉक्साइड और कॅल्शियम परमैंगनेट की अभिक्रिया से टरबाइन चलाया जाता था। ये टरबाइन के एक ओर छोटी टंकियो मे रखे थे। टरबाइन अपनी बारी में ईंधन-पम्पो को चलाता था। अन्त में रॉकेट के सबसे पिछले हिस्से पर दहन-कक्ष था जिसमें ऐल्कोहॉल और द्रव ऑक्सीजन को मिलाने से प्राप्त मिश्रण को लगभग 2700 डिग्री सेंटीग्रेड ताप पर जलाया जाता था। इससे वेन्चुरी तुंड में से 4500 मी.प्र.घ. का निकास-वेग उत्पन्न होता था।

कक्ष को तेज गर्मी के कारण पिघलने से बचाने के लिये वह दोहरी दीवार का बना था और कक्ष के भीतर जाते हुए ऐल्कोहॉल को दीवारों के बीच में से परिवाहित किया जाता था। कक्ष को ठण्डा करने के लिये प्रणोदकों के उपयोग की इस विधि को पुनर्जनक शीतलन (regenerative cooling) कहते हैं।

$8\frac{1}{2}$ टन प्रणोदकों को छोड़कर V-2 का भार लगभग 4 टन था। इसलिये उपयोगी भार को मिलाकर रॉकेट का प्रत्येक टन लगभग 2·2 टन प्रणोदक वहन करता है। रॉकेट और प्रणोदक के आपस का यह भार-अनुपात बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अपने भार के अनुपात में वह जितना अधिक प्रणोदक और उपयोगी भार ले जायेगा उतना ही अधिक कार्यक्षम होगा। बोइंग निर्मित एस-आई.सी. (S-IC) द्रव-प्रणोदक सैटर्न-5 चन्द्र रॉकेट की प्रथम अवस्था का संरचना भार 135 टन है। फिर भी वह लगभग 2045 टन प्रणोदक ले जाता है जो रॉकेट के प्रति टन भार के लिये 15 टन प्रणोदक से भी अधिक बैठता है।

भार बचाने के उद्देश्य से डिज़ाइन बनाने वाले प्रणोदक टंकियों की दीवारों को रॉकेट के बाहरी पृष्ठ के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इससे पृथक् पृष्ठ की आवश्यकता नहीं रहती है। ठोस-प्रणोदक और संग्रहणीय द्रव-प्राणोदक रॉकेट-मोटरों के लिये ऐसा करना आसान होता है क्योंकि वे प्रायः सामान्य बेलन होते है जिनके एक सिरे पर तुंड होता है। डिज़ाइन बनाने वाला बेलन पर पंख जोड़ देता है तथा उपयोगी भार, निर्देशन और नियंत्रण उपकरण वाले नुकीले नासिका भाग को बन्द कर देता है। और रॉकेट बनकर तैयार हो जाता है।

कार्यक्षमता की दूसरी माप निकास-वेग है जो आधुनिक द्रव-प्रणोदक रॉकेटों में 5500 मी.प्र.घ. होती है। किन्तु अधिक उपयुक्त माप आपेक्षिक आवेग (impulse) है जिसका रॉकेट-इंजीनियर वही अर्थ लगाते है जो मोटर चालक मील प्रति गैलन का लगाते हैं। यह एक सामान्य सख्या है जो इंजन के प्रचालन के एक सैकंड में एक पौंड प्रणोदक से प्राप्त प्रणोद (thrust) की मात्रा को बतलाती है। सैटर्न-5 लांच रॉकेट की बाद की अवस्थाओं के लिये, जिनमें ईंधन के रूप में द्रव हाइड्रोजन का उपयोग किया जाता है, यह 424 है। V-2 का आपेक्षिक आवेग 215 था।

हमारे वर्तमान ज्ञान के बावजूद आई.सी.बी.एम. और अन्तरिक्ष रॉकेटों के लिये आवश्यक गति, ऊँचाई और परास को प्राप्त करना असम्भव होगा। इनके लिये हम केवल स्टेप रॉकेट सिद्धान्त का उपयोग कर सकते हैं जिसकी खोज एक सौ वर्ष से भी पहले कर्नल बॉक्सर ने अपनी बचाव-रस्सी रॉकेट के लिये की थी।

यदि हम पर्वतारोही दलों द्वारा ऊँची चोटियों पर चढ़ने की तकनीक को जानते हों तो स्टेप रॉकेट की कार्य-पद्धति को समझना आसान होगा।

सन् 1953 के वसन्त में जब सर जॉन हंट का दल एवरेस्ट विजय के लिये रवाना हुआ तो उसके दल में 13 पर्वतारोही और आरोहण के लिये आवश्यक भोजन और अन्य सामग्री को ले जाने के लिये बहुत से बोझा ढोने वाले व्यक्ति थे। इस प्रकार 24,000 फ़ुट की ऊँचाई पर काफ़ी बड़ा और सुविधापूर्ण कैम्प डालने में सफलता मिली। वहाँ से तीन आदमी भोजन और उपस्करों (equipment), का छोटा-सा बोझ 27,900 फ़ुट की ऊँचाई तक पहुंचाकर वापस लौट आये। हिलेरी और तेनज़िंग ने सामान को ऊपर ले जाने में

अपनी शक्ति खर्च नहीं की तथा वे तरोताजा होने के कारण एवरेस्ट चोटी पर पहुँचने में सफल हुए। यदि उन्हें सारे रास्ते में अपना भोजन और अन्य उपस्कर स्वयं ले जाना होता तो वे एवरेस्ट पर न पहुंच पाते।

उसी प्रकार स्टेप रॉकेट में भी एक छोटा रॉकेट होता है जिसे एक बड़ा रॉकेट ले जाता है—और इस बड़े रॉकेट को उससे भी बड़ा रॉकेट ले जाता है। इस प्रकार प्रत्येक रॉकेट को उससे बड़ा रॉकेट ले जाता है। रॉकेट की कुल संख्या आवश्यक चरणों (steps) और पदों (stages) पर निर्भर करती है। सिद्धान्त रूप में कितने पद हों इसकी कोई सीमा नहीं है, किन्तु लम्बी परास वाला त्रि-पद (three-stage) रॉकेट का ही आकार भयानक लगने लगता है।

अब हम समझ सकते हैं क्यों V-2 में एक टन वारहेड को 3600 मी.प्र.घं. की गति से 150 मील तक ले जाने के लिये रॉकेट प्रणोदक के 11 टन, भार को ले जाना पड़ा था। जब जर्मनों ने अमेरिका पर आक्रमण करने के लिये रॉकेट के परास का विस्तार करना चाहा तो उन्होंने हिसाब लगाया कि इसके लिये उन्हें 6200 मी.प्र.घ. की अधिकतम गति प्राप्त करनी होगी। इसके लिये V-2 को यात्रा के पहले चरण में ले जाने के लिये 78 टन भार वाले प्रथम-पद के 'बूस्टर' रॉकेट ('booster' rocket) की आवश्यकता थी।

यदि स्टेप रॉकेट A-9/A-10 को कभी फ़ायर किया गया होता तो बूस्टर एक संशोधित (improved) V-2 को, बिना उसके प्रणोदकों को खर्च किये, 2600 मी.प्र.घ. की चाल से वायुमण्डल में दूर ले जाता। जब बूस्टर के प्रणोदक समाप्त हो जाते तो भार कम करने के लिये उसे नीचे फेंक दिया जाता और V-2 का इंजन स्वत: चलने लगता। इस इंजन की 3600 मी.प्र.घं. की गति और रॉकेट की गति के योग से आवश्यक 6200 मी.प्र.घं. की गति उत्पन्न हो जाती।

यद्यपि एक टन वारहेड को ले जाने के लिये 90 टन भार वाले द्वि-पद (two-stage) रॉकेट का प्रयोग बहुत ही खर्चीला तरीका था, किन्तु 1945 में केवल इसी तरीके से जर्मनी, अमेरिका पर आक्रमण कर सकता था और आज भी किसी मिसाइल को अन्तरमहाद्वीपीय परास देने अथवा किसी उपग्रह (satellite) को पृथ्वी के चारों ओर कक्षा में रखने के लिये स्टेप रॉकेट का उपयोग ही एकमात्र विधि है।

## मिसाइल परिवार

पहले जर्मन V-2 जैसे रॉकेट मुख्यत: तोपखाने की ही एक किस्म समझे जाते थे जो दूर के लक्ष्यों की बमबारी के लिये बन्दूकों की अपेक्षा अधिक परास वाले और अधिक यथार्थ होते थे। उसके बाद विमान-वेधी (anti-aircraft)

मिसाइल और हवा में छोड़ जाने वाले छोटे मिसाइल बनाये गये। विमान-वेधी मिसाइल वायु-रक्षाकार्यों के लिये बन्दूकों की जगह काम में लाये जाने लगे और हवा में छोड़े जाने वाले (air launched) छोटे-छोटे मिसाइल आधुनिक लड़ाक विमानों में तोपों (cannons) और मशीन-गनों की जगह काम में लाये जाने लगे।

अब कुछ कार्यों के लिये लड़ाकू जहाजों और पाइलट द्वारा चालित बम-वर्षकों के स्थान पर अथवा उनके अनुपूरक के रूप में निर्देशित शस्त्रों (guided weapons) का प्रयोग किया जा रहा है। फलस्वरूप सभी आकारों और परिमाणों में अनेक किस्म के मिसाइलों का निर्माण हुआ है। उनके कार्य के अनुसार उन्हे 9 हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है। उनकी कार्य-प्रणाली सीखने से पहले हमें इन विभिन्न किस्मों के बारे में जान लेना चाहिये।

**हवा से हवा में मार करने वाला मिसाइल** (Air-to-air missile)—यह प्रायः बहुत छोटा होता है। इसे एक वायुयान से दूसरे वायुयान को गोली मारने के लिये इस्तेमाल किया जाता है। इसे वायुयान के पंखों के नीचे, पाइलॉन (pylons) पर अथवा वाह्य धड़ (fuselage) पर अथवा धड़ के पेंदे पर
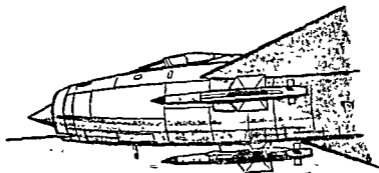
फ़ायरस्ट्रोक हवा से हवा में मार करने वाला मिसाइल एक लाइटनिंग अंतरोधक पर

बनी एक आंतरिक शस्त्र-कक्षिका (internal weapons-bay) में रखा जा सकता है। लक्ष्य के परास के भीतर आने पर बहुधा यह लड़ाकू विमान के रेडार से स्वतः ही फ़ायर हो जाता है।

**हवा से भू-पृष्ठ पर मार करने वाला मिसाइल** (Air-to-surface missile)—यह रॉकेट अथवा जेट-नोदित मिसाइल होता है जिसे किसी वायुयान से फेंककर जमीन अथवा समुद्र के ऊपर स्थित लक्ष्यों को नष्ट किया जाता है। हैलीकोप्टरों और हल्के वायुयानों से फ़ायर किये जाने वाले निर्देशित टैंक-मार (guided anti-tank) रॉकेट सबसे छोटे होते हैं। दूर रखे बम (stand-off bomb) सबसे बड़े होते हैं जो लक्ष्यों से कई मील दूर बमवर्षकों द्वारा फेंके जाते हैं और अपनी ही शक्ति से आक्रमण को पूरा कर देते हैं। इस प्रकार स्वयं बम वर्षकों को रक्षक लड़ाकुओं और विमान-वेधी तोपों के अन्तिम घेरे से लड़ाई करने की आवश्यकता नहीं रहती है। दूर रखे बम को प्रायः वायुयान के पंखों के नीचे अथवा धड़ के पेंदे पर विशेष रूप से बनाये गये बम-कक्ष में आधा अन्दर की ओर रखकर ले जाते हैं।
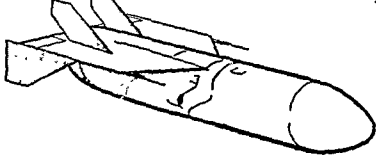
अमेरिकन क्वेल एक विचित्र मिसाइल है। इसे एक B-52 बममार से उड़ान के लिये छोड़ा जाता है। इलेक्ट्रॉनिकी उपकरण से युक्त इस मिसाइल को दुश्मन के रक्षा-प्रयत्नों को धोखा देकर बममार के बचाव के लिये बनाया गया है। यद्यपि यह 157 फुट लम्बे बम मार की अपेक्षा लगभग 13 फुट लम्बा होता है लेकिन रेडार के पर्दे पर इसकी पहचान नहीं हो सकती।
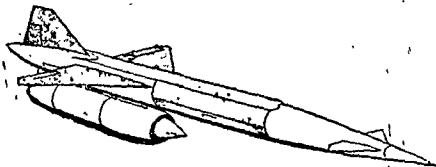
हवा से भू-पृष्ठ पर मार करने वाला मिसाइल—हाऊंड डॉग

भू-पृष्ठ से हवा में मार करने वाला मिसाइल (Surface-to-air missile)—यह विमान-वेधी शस्त्र प्राय: जमीन के ऊपर अथवा किसी जहाज के ऊपर ढलान से फेंका जाता है। बोइंग बोमार्क (Boeing Bomarc) (देखिये पृष्ठ 52) के अतिरिक्त आजकल प्रयुक्त सभी भू-पृष्ठ से हवा में फ़ायर किये जाने वाले मिसाइलों का परास 100 मील से कम होता है और ये लड़ाकू रक्षापंक्ति से
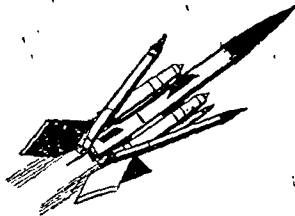
भू-पृष्ठ से हवा में मार करने वाला मिसाइल—ब्लडहाऊंड। इसमें बूस्टरों को गिरते हुए दिखाया गया है।
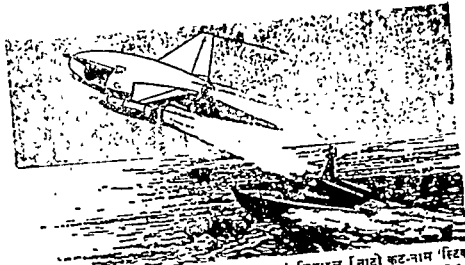
रॉकेट से शक्ति प्राप्त करने वाला रूसी 'उड़न बम' मिसाइल [नाटो कूट-नाम 'स्टिक्स'
(Styx)] जिसे तीव्र पेट्रोल चालित नावों (जैसी मिसाइल के नीचे दिखाई गई है)
में रखे आधानों (Containers) से लॉंच किया जाता है। जब इसका पूरा
ईंधन जल जाता है तो धड़ के नीचे स्थित बूस्टर मोटर गिर जाता है।
इस प्रकार के मिसाइलों का उपयोग 21 अक्तूबर 1967 को मिस्र ने
इज़राइल के विध्वंसक (destroyer) 'आइलट' (Eilat)
को डुबाने के लिये किया था।
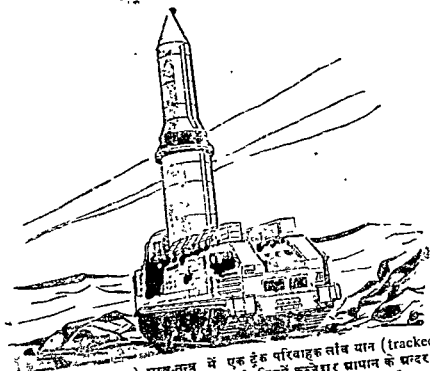
रूस के 'स्कैंप' (Scamp) शस्त्र-तन्त्र में एक ट्रैक परिवाहक लॉंच यान (tracked
Transporter launch vehicle) होता है जिसमें कब्जेदार आधान के अन्दर
द्वि-पद 'स्केपगोट' रॉकेट होता है। यह अत्यन्त गतिशील होता है और
'स्केपगोट' का परास 2500 मील होता है। यान को स्पष्ट दिखाने
के लिये चित्र में आधान नहीं दिखाया गया है।

करते है और उन्हें टार्गेटों के अधिक समीप ले जाकर उनके प्रभावकारी परास (effective range) को बढ़ा देते हैं।

एक अन्य भू-पृष्ठ से भू-पृष्ठ पर मार करने वाला शक्तिशाली रूसी रॉकेट एस.एस.-9 (स्कार्प) है जो दो प्रकार से उपयोगी है। मानक आई.सी.बी.एम. का संग्रह और फ़ायरिंग ज़मीन के नीचे रखे लांचरों से किया जाता है जिसमें या तो 20/25 मेगाटन एच-बम (H-बम) वारहेड अथवा एक विशेष प्रकार का तीन

विशाल द्रव प्रणोदक एस.एस-9 रॉकेट जिसे नाटो 'स्कार्प' (Scarp) नाम से जानता है। इसका उपयोग दोनों भांति आई.सी.बी.एम. के रूप में और एफ़.ओ.बी.एस. 'अन्तरिक्ष बम' के लांचर के रूप में होता है।

बहु स्वतन्त्र-टार्गेट पुनर्प्रवेश यान (multiple independently-targeted re-entry vehicle—MIRV) फ़िट किया जाता है। उन्हें इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है कि उनका पैटर्न बिल्कुल तीन अमेरिकन माइन्यूटमैन आई.सी.बी.एम भूमिगत लांचरों के उड़ान-स्थलों से मिलता है।
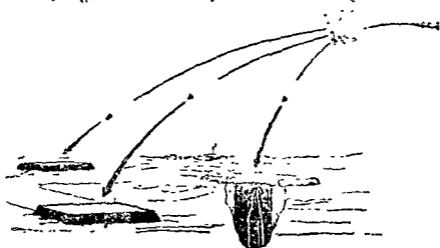
एक वारहेड के बजाय अब अनेक टार्गेटों पर शीघ्र और ठीक-ठीक आक्रमण करने के लिये आई सी.बी.एम. को छोटे बहु स्वतन्त्र टार्गेट पुनर्प्रवेश यानोंसे युक्त किया जा सकता है।

दूसरे रूप में 'स्कार्प' का उपयोग रूसी 'अन्तरिक्ष बम' को लांच करने के लिये किया जाता है जिसे अमेरिका में 'आंशिक कक्षीय बमबारी पद्धति' (fractional orbital bombardment system—FOBS) कहते हैं। इसका उल्लेख वारहेड के रूप में किया जा चुका है जिसे पृथ्वी से लगभग 100 मील ऊपर कक्षा में लांच किया जा सकता है। प्रथम परिक्रमा पूरी करने से पहले ही निश्चित स्थान पर एक पश्च-रॉकेट (retro-rocket) वारहेड को धीमा कर

उसे टार्गेट पर गिरा देता है। मूलतः अमेरिकन मिसाइल और बममार अड्डों पर आक्रमण करने के लिये बनाये गये एफ़.ओ.बी.एस. के कुछ लाभ हैं। इसमें चेतावनी देने के लिये बहुत कम समय की आवश्यकता होती है और उसके द्वारा पूर्णतः रक्षित उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर से टार्गेटों तक पहुंचा जा सकता है। एफ़.ओ.बी.एस. को मुख्य कमी यह है कि यह सामान्य आई.सी.बी.एम. से कम यथार्थ होता है।

कुछ भू-पृष्ठ से भू-पृष्ठ पर फ़ायर किये जाने वाले मिसाइल रॉकेट नहीं बल्कि 'उड़न बम' (flying bomb) होते हैं जो बिना पाइलट वाले वायुयानों के समान दिखाई देते हैं और जिन्हें जेट-इजनों से शक्ति मिलती है। इन्हें बहुधा 'पर्यटक मिसाइल' (cruise missile) अथवा वायु-श्वसन मिसाइल (air-breathing missile) कहते हैं क्योंकि उन्हें परिकक्षा के समान प्रक्षेप-पथ में चलने के बजाय वायुमण्डल में 65000 फ़ुट के नीचे पर्यटन करना पड़ता है।

**भू-पृष्ठ से पानी के नीचे मार करने वाला मिसाइल (Surface-to-underwater missile)**—पानी के जहाज़ से फ़ायर कर इससे किसी अन्य पानी के जहाज़ या पनडुब्बी पर आक्रमण किया जाता है। इस प्रकार का एक शस्त्र
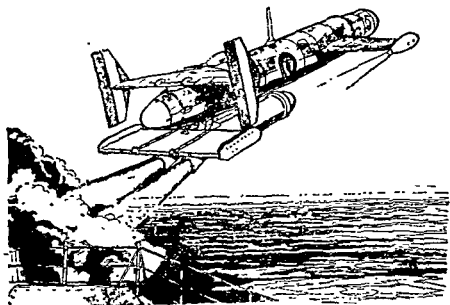
भू-पृष्ठ से पानी के भीतर मार करने वाला मिसाइल – मैलाफ़ॉन

फ़ांसिसी मैलाफ़ॉन है जो दो ठोस-प्रणोदक रॉकेट-मोटरों की मदद से किसी जहाज़ से छोड़ा जाता है। जब ईंधन जल जाता है तो ये मोटर गिर जाते हैं। तत्पश्चात् वह 500 मील प्रति घण्टा की गति से लक्ष्य की ओर जाता है। लक्ष्य से आधे मील पर एक हवाई छतरी खुलती है जिससे मैलाफ़ॉन की गति इतनी तेजी से धीमी पड़ जाती है कि जड़त्व द्वारा उसका होमिंग टारपीडो उपयोगी भार सामने से बाहर निकलकर पानी में प्रवेश कर जाता है और अंततः लक्ष्य की ओर जाता है।

पानी के भीतर से भू-पृष्ठ पर मार करने वाला मिसाइल (Underwater-to-surface missile)—इस प्रकार का सुप्रसिद्ध मिसाइल लॉकहीड पोलेरिस (Lockheed Polaris) ज्ञात है जो विशेष प्रकार की नाभिकीय शक्ति से चालित पनडुब्बी द्वारा ले जाया जाता है। प्रत्येक पनडुब्बी 16 मिसाइल तक ले जाती है। जब उसे छोड़ना होता है तो एक छोटा-सा रॉकेट-मोटर फ़ायर किया जाता है जिससे निकास गैसें लांच-नली में प्रवेश करती हैं और 'पॉप' पोलेरिस
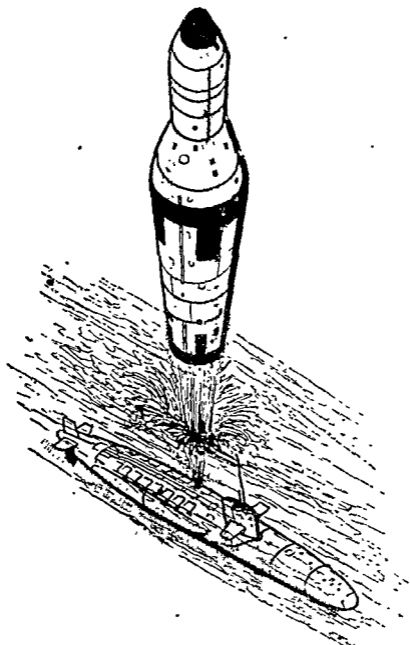
पानी के भीतर से भू पृष्ठ पर मार करने वाला मिसाइल पोलैरिस जिसे पानी में डूबी पनडुब्बी से फ़ायर किया जा रहा है।

सतह पर आ जाता है। इसके बाद प्रथम चरण वाला रॉकेट-मोटर जलता है और पोलेरिस भू-पृष्ठ से भू-पृष्ठ पर मार करने वाले एक साधारण आइ.आर.बी.एम. की भांति हवा में लक्ष्य की ओर जाता है। पोलेरिस से रक्षा करने में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, क्योंकि भू-मिसाइलों के विपरीत यह एक ऐसे चलते-फिरते (movable) बेस से आता है जिसका स्थान निर्धारण करना कठिन होता है।

पानी के भीतर से पानी के भीतर मार करने वाला मिसाइल (Under-water-to-underwater missile)—इस प्रकार का एक शस्त्र सबरॉक (पनडुब्बी रॉकेट) है जिसे गुडइअर ने बनाया है; इसका उद्देश्य अमेरिकन पन-डुब्बियों द्वारा दूरस्थित दुश्मन की पनडुब्बियों और जहाजों पर आक्रमण करना है। इसमें एक अतिस्वनिक प्राक्षेपिक रॉकेट मिसाइल होता है जिसे निमज्जित पनडुब्बी के टारपीडो नली से फ़ायर किया जाता है। सतह पर आने के बाद इसका एक बड़े ठोस-प्रणोदक बूस्टर द्वारा हवा में नोदन किया जाता है जो जलने के बाद गिर जाता है और मिसाइल तथा उसका नाभिकीय गहराई चार्ज वारहेड सतत्

(1) क्षैतिज दिशा में छोड़ा गया है।
(2) रॉकेट-मोटर ज्वलित होता है।
(3) समुद्र से बाहर निकलकर मिसाइल सीधा ऊपर को जाता है।
(4) बूस्टर अलग हो जाता है।
(5) प्रक्षेप-पथ निर्देशन में।
(6) समुद्र में पराध्वनिक वेग से पुनः प्रवेश।
(7) नाभिकीय वारहेड का विस्फोट होता है।

सबरॉक की कार्य विधि

सबरॉक
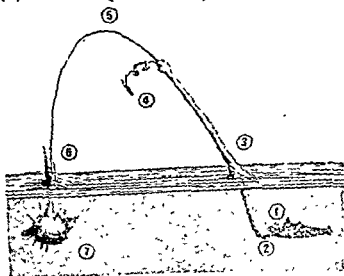
मार्ग निर्देशन में अपना प्रक्षेप-पथ पूरा करता है और लक्ष्य के निकट पानी में पुनः प्रवेश करता है।

यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि मिसाइल पूरे शस्त्र-तंत्र का एक अवयव-मात्र होता है। भू-पृष्ठ से भू-पृष्ठ पर मार करने वाले अमेरिका के 460 मील परास वाले पर्शिंग जैसे अपेक्षाकृत सरल ठोस-प्रणोदक तोपखाना-रॉकेट को अपने मार्ग में लाने के लिये चार ट्रैक वाली गाड़ियों की आवश्यकता होती है। इन गाड़ियों में हैं—उत्थापक-लाँचर सहित मिसाइल परिवहन गाड़ी, न्यूक्लीय वारहेड को ले जाने के लिये एक गाड़ी, पूर्ण शस्त्र-तंत्र के लिये आवश्यक शक्ति को पैदा करने और सप्लाई करने के लिये एक अन्य गाड़ी तथा जटिल फायर नियंत्रण एवं संचार उपस्कर को रखने के लिये चौथी गाड़ी। जब अमेरिकन सेना ने इस बात पर बल दिया कि सभी यूनिट छोटे और हल्के हों ताकि उन्हें यू.एस.ए.एफ. के C-133 कार्गोमास्टर भारवाही वायुयानों में दूर युद्ध-क्षेत्रों में ले जाया जा सके तो डिज़ाइन बनाने वालों की समस्याएँ बढ़ गईं।

इस भू-उपस्कर की आवश्यकता क्यों होती है, इसके बारे में कुछ मालूम करने के लिये हमें मिसाइल की चिकनी खाल के नीचे स्थित उपस्कर की बारीकियों को देखना चाहिये जिसकी वजह से मिसाइल लक्ष्य को पहचानकर उसे नष्ट कर देते हैं।

## निर्देशित शस्त्र

जिन लोगों को निर्देशित मिसाइलों के बारे में अच्छा ज्ञान है वे इन्हें केवल बढ़िया किस्म की आतिशबाज़ी वाले यन्त्र मानते हैं जो शक्तिशाली विस्फोटकों को काफ़ी दूर ले जा सकते हैं। सन् 1945 में V-2 रॉकेटों के आक्रमणों का अनुभव करने के बाद उन्होंने भविष्यवाणी की कि तथाकथित बटन-युद्ध (push-button warfare) आरम्भ होने वाला है। फिर भी अमेरिका में सन् 1960 में प्राप्य सबसे बढ़िया किस्म का बमबार मिसाइल केवल V-2 का एक संशोधित रूप था और जो अखबार यह कहा करते थे कि पाइलट द्वारा चालित लड़ाकू और बममार वायुयानों की जगह शीघ्र मिसाइलों का उपयोग होने लगेगा वे भी अपनी जल्दबाज़ी पर अफसोस प्रकट करने लगे हैं।

हालांकि V-2 एक बहुत बड़ी उपलब्धि है किन्तु वास्तव में आजकल जिन निर्देशित शस्त्रों का उत्पादन हो रहा है उनकी तुलना में यह पुराना है। यहाँ पर V-2 की कोई आलोचना नहीं की जा रही है। यह कहना तो उसी प्रकार है जिस प्रकार यह कहना कि 1903 का राइट का बाइप्लेन (biplane) जेट एअरलाइनर के बराबर तेज़ और दूर तक नहीं उड़ता था। किन्तु यह समझ लेना चाहिये कि एटलस (Atlas) जैसे किसी आई.सी.बी.एम. की निर्दोष रचना

शायद अब तक मनुष्य द्वारा की गई सबसे मुश्किल इन्जीनियरी प्रायोजना थी। यदि संहार के अतिरिक्त इसका कोई अन्य उपयोग नही रहा तो यह प्रतिभा और कौशल का कल्पनातीत अपव्यय होगा। किन्तु हम यह जानते हैं कि हाइड्रोजन-

निर्देशित शस्त्र के मुख्य भाग

बम वारहेड को पृथ्वी के पृष्ठ पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिये बनाया गया रॉकेट किसी उपग्रह को भी अन्तरिक्ष में उतनी ही आसानी से ले जा सकता है।

निर्देशित मिसाइल का परिमाण और कार्य भले ही कुछ भी हो यह एक दर्जन विकसित विज्ञानों के फलस्वरूप बनाया गया है। अगले भाग को छोड़कर इसका बाहरी आकार वायुयान से बहुत कम महत्त्वपूर्ण होता है और वह मूलतः एक साधारण सिलिण्डर होता है। बहुत से लम्बे परास वाले नवीनतम बममार मिसाइलों (bombardment missiles) में पिछले पख (tailfins) तक नहीं होते हैं क्योंकि ये केवल रॉकेट के वायुमण्डल में जाते समय उपयोगी होंगे। यह समय इतना कम होता है कि उनके भार का औचित्य नहीं है। इसके बजाय रॉकेट के तुंड को चूलदार बनाकर (pivoting) उनकी दिशा परिवर्तित की जाती है।

लगभग सभी समस्याएँ और जटिलताएँ मिसाइल की चिकनी खाल के भीतर निहित रहती हैं जिन्हें चार मुख्य वर्गों में बांटा जाता है—मोटर, निर्देशक, नियन्त्रक और वारहेड।

इन चार वर्गों की इतनी विभिन्न किस्में हैं कि डिज़ाइन बनाने वाले के लिये सर्वोत्तम मेल (combination) छांटना वैसा है जैसा किसी फ़ुटबाल पूल के सही परिणाम के बारे में पहले ही बताने की कोशिश करना।

उसके सामने यह समस्या है कि वह अपने मिसाइल को रैमजेट इंजन से शक्ति प्रदान करे जिससे मिसाइल को अधिक लम्बा परास प्राप्त होगा या रॉकेट-मोटर से जो मिसाइल को अधिक ऊंचा और संभवतः अधिक तीव्र गति से ले जायेगा ? अगर वह शक्ति के लिये रॉकेट को चुने तो वह ठोस-प्रणोदक वाला हो या द्रव-प्रणोदक वाला ?

वह सरल और अपेक्षाकृत सस्ते रेडियो-नियन्त्रण-तन्त्र पर भरोसा करे अथवा अधिक जटिल निर्देशन-तन्त्र पर जिसे दुश्मन के विरोधी साधन जाम नहीं कर सकते हैं ? क्या उसे वास्तव में किसी निर्देशन-तन्त्र की आवश्यकता है भी ? क्यों न मिसाइल को सही दिशा में रखकर फिर भ्रमि-स्थायीकरण (spin-stabilization) द्वारा उसका मार्ग सीधा रखा जाय ?

किस प्रकार के वारहेड की आवश्यकता है ? प्रत्येक लक्ष्य के लिये नाभिकीय वारहेड की तो आवश्यकता होती नहीं है। यदि वह तीव्र विस्फोटक को फ़िट करना चाहे तो वह लक्ष्य के कुछ महत्वपूर्ण हिस्सों को तोड़कर विखेरने अथवा पृथक् करने के उद्देश्य से विखडन किस्म (fragmentation type) का हो जो धातु के तीखे टुकड़ों को सब दिशाओं में फेंक देता है अथवा वह केवल स्फोट अथवा आग से नष्ट करने वाला हो ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर इस बात पर निर्भर है कि शस्त्र का किस काम के लिये उपयोग किया जायेगा और उस शस्त्र की जल्दी आवश्यकता है या नहीं।

उदाहरणार्थ, जब अमेरिकन वायुसेना ने पहले निर्देशित मिसाइल का आदेश दिया तो ज्यादा चालाकी दिखाने का समय नहीं था। उसे लगभग 500 मील परास के एक बममार शस्त्र की आवश्यकता थी और इस काम के लिये मार्टिन कम्पनी ने एक सीधा बिना पाइलट वाला बममार अथवा 'उड़न बम' बनाया। उसका नाम मैटाडोर (Matador) रखा गया। उसका आकार प्रचलित वायुयान के आकार जैसा था और उसे एक एलीसन टर्बोजेट इजन से शक्ति प्रदान की गई थी जो उसी मूल किस्म का था जिस किस्म को हज़ारों शूटिंग स्टार (Shooting-Star) जेट-लड़ाकू विमानों और प्रशिक्षण वायुयानों में फ़िट किया गया था।

इस जेट-इजन के उपयोग का मतलब यह था कि मैटाडोर एक साधारण वायुयान से अधिक ऊंचाई पर और अधिक तीव्र गति से नहीं उड़ सकेगा। इसके विपरीत उसके छोटे परिमाण के कारण वह रक्षा के लिये एक कठिन लक्ष्य था और उसका डिजाइन बनाने वालों को मालूम था कि यदि उन्होंने इस सुपरीक्षित और शीघ्र प्राप्य इजन का उपयोग किया तो उनके सामने शक्ति संयंत्र समस्या नहीं आयेगी।

निर्देशन-तन्त्र का चयन भी ऐसे ही व्यावहारिक ढंग से किया गया था। कोरिया में अमेरिकन पाइलट चालित वायुयान का नियन्त्रण रेडार-निर्देशन-तन्त्र द्वारा किया गया था जिसका नाम एम.एस.क्यू. (MSQ) था और यह निश्चय किया गया कि इसका उपयोग मैटाडोर के लिये किया जाये। इसमें खास दिक्कत यह थी कि मिसाइल पर पूरी उड़ान के दौरान लगातार दृष्टि रखने के लिये भूमि-रेडार-स्टेशनों के जाल (network) की आवश्यकता थी जिसका अर्थ यह था कि जब तक मिसाइल, दृष्टि-परास की रेखा (line-of-sight range) के अन्दर रहता केवल तभी तक उसका ठीक-ठीक नियन्त्रण संभव था। किन्तु यह एक युद्ध-परीक्षित तन्त्र था और किसी अधिक अच्छी विधि के मालूम होने तक पर्याप्त था।

एटलस आई.सी.बी.एम.
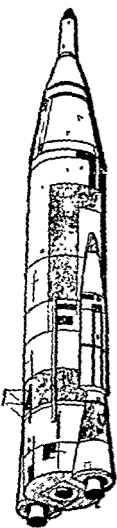
फलस्वरूप यू.एस.ए.एफ. (U.S.A.F.) सन् 1954 तक आरम्भिक टी.एम.-61ए (TM-61A) मैटाडोर को ही काम में लाता रहा और इस शस्त्र की संशोधित किस्म, जिसका नाम एम.जी.एम.-13सी मेस (MGM—13C Mace) है, अब भी अमेरिकन सेना का महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि बीच के वर्षों में इस शस्त्र में बहुत अधिक उन्नत और आत्मनिर्भर निर्देशन-तन्त्रों को फ़िट किया गया है।

इसलिये मैटाडोर एक निर्देशित शस्त्र का उदाहरण है जो आरम्भ में बहुत-कुछ विमान जैसा ही था। वायुयान में जिस प्रकार मानव कर्मीदल (human crew) होता है, इसमें उसकी जगह ब्लैक बॉक्स (black boxes) होते हैं। पर एटलस आई.सी.बी.एम. विमान से बहुत भिन्न है। उसमें हाइड्रोजन-बम वारहेड को कम से कम 5000 मील दूर ले जाने की प्रमुख आवश्यकता के सामने लागत अथवा जटिलता का कोई विचार नहीं रखा जाता है। वारहेड को बिल्कुल ठीक-ठीक ले जाने की आवश्यकता होती है और दुश्मन द्वारा किये गये प्रत्युपायों का प्रतिरोध करना पड़ता है।

एटलस (Atlas) और टाइटन (Titan) द्रव-चालित आई.सी.बी.एम. के पच्चीस स्क्वाड्रनों (squadrons) को काम पर लगाने के लिये अमेरिका को लगभग 370 करोड़ पौंड खर्च करना पड़ा किन्तु इतने बड़े खर्च के बदले यू.एस.ए.एफ को भयानक शक्ति का शस्त्र मिल रहा है जिससे रक्षा कर सकना अभी तक संभव नहीं है।

एटलस विकास कार्यक्रम की पूरी लागत का लगभग एक-तिहाई डिज़ाइन बनाने, उसे पूरा करने और उसके विचित्र आकार के नासिका-कोन का परीक्षण करने में खर्च हुआ। इसके कारण को तकनीकी शब्दों में पुनःप्रवेश (re-entry) समस्या कहते हैं जिसका सरल शब्दों में अर्थ है—"हाइड्रोजन-बम वारहेड युक्त नासिका-कोन को एकसाथ लक्ष्य के ऊपर वापस वायुमण्डल में लाने की समस्या। एटलस के केवल इसी हिस्से को वापस लाना पड़ा था और अन्तरिक्ष में ही इसे बाकी वायुयान के ढांचे से पृथक् कर दिया गया था।

कोई भी वस्तु जो अन्तरिक्ष से वायुमण्डल में उच्च गति से प्रवेश करती है उसका हवा के साथ इतने जोर से घर्षण होता है कि वह जल जाती है। यही कारण है कि उल्कापिंड (meteorites) शूटिंग स्टार (shooting star) के रूप में समाप्त हो जाता है और इसी वजह से रूस के आरम्भिक स्पुतनिक उपग्रह (Sputink satellite) पिघली धातु की उद्दीप्त धारी के रूप में नष्ट हो गये थे।

यदि किसी हाइड्रोजन बम को वायुमण्डल में पुनः प्रवेश करते ही उसे ऊष्मा से नष्ट कर देना हो तो उसे एटलस आई.सी.बी.एम. के अगले हिस्से में 5000 मील ले जाना निरर्थक है। यही कारण है कि पुनःप्रवेश की समस्या पर इतना अधिक समय देकर प्रयत्न किये जा रहे हैं। सभी प्रकार के विचारों की जाँच की गई है। जिस प्रकार के लम्बे और तंग नासिका-कोन का एटलस के लिये विकास किया गया था और जिसका पोलैरिस के A-2 रूप में अब भी उपयोग किया जाता है (देखिये पृष्ठ 37) उस पर विशेष प्लास्टिक पदार्थों का लेप किया जाता है। ये प्लास्टिक पदार्थ जल जाते हैं तथा ऊष्मा का अवशोषण हो जाता है और वारहेड पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसा भी पाया गया है कि कुछ विशेष आकार के नासिका-कोन अपनी अधिकांश ऊष्मा को एक ऐसे मजबूत आघात-तरंग में प्रवाहित कर देते हैं जो उनकी रक्षा करती है।

अनेक वर्षों के अनुसधान के फलस्वरूप अमेरिका ऐसे नासिका कोनों की उपलब्धि कर सका है जिन्होंने वायुमण्डल में 17000 मी.प्र घं. (ध्वनि की गति से 26 गुना) की गति से पुनः प्रवेश किया। ऐसा करने के बाद वे और रूसी अपने मानवयुक्त अन्तरिक्षयान (manned spacecraft) का डिज़ाइन तैयार करने में ऐसी ही तकनीको का उपयोग करने लगे। इसलिये मिसाइल वारहेड के लिये मालूम की गई तकनीकों के फलस्वरूप अन्तरिक्ष में उड़ान करने के बाद मनुष्य को सुरक्षित वापस वायुमण्डल में लाना संभव हो गया है।

अन्तरिक्षयानों का पुनःप्रवेश, आई सी.बी.एम. कार्यक्रम से प्राप्त होने वाला एकमात्र असैनिक लाभ नहीं है। जब अमेरिका की नॉटिलस (Nautilus) और स्केट (Skate) नामक पनडुब्बियों ने सन् 1958 की गर्मियों में उत्तरी ध्रुव हिम कटिबन्ध के नीचे अपनी ऐतिहासिक अन्तर्जल यात्रा की तो उन्होंने उसी नौचालन तन्त्र (navigation system) की मदद से अपना मार्ग मालूम किया जिसका आविष्कार आरम्भ में अन्तरमहाद्वीपीय मिसाइल के लिये किया

गया था। इसे जड़त्व निर्देशन-तन्त्र (inertial guidance system) कहते हैं और यह युक्ति मिसाइल को ठीक-ठीक लक्ष्य तक ले जाने के लिये प्रयुक्त अनेक आकर्षक युक्तियों में से एक है जैसा कि हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

## निर्देशन-तन्त्र

दुनिया में सबसे उत्तम, सबसे अधिक परिवर्तनशील और सबसे अधिक हल्का निर्देशन-तन्त्र मानव-मस्तिष्क है। यदि किसी लड़ाकू विमान का पाइलट यह देखता है कि जिस बममार को मारने के लिये उसे भेजा गया है वह मित्र पक्ष का है तो वह वापस आ सकता है। यदि उड़ान के समय उसके वायुयान में कुछ खराबी आ जाती है तो वह स्वयं इसका कारण मालूम कर उसे ठीक कर सकता है। यदि दुश्मन के फ़ायर करने में उसके नियन्त्रक यन्त्र खराब हो जाते हैं अथवा उसका रेडियो काम नहीं करता है अथवा उसका आधा ईंधन टंकी से निकल जाता है तो वह इसका ठीक निदान सोचकर आवश्यक कार्रवाई करता है।

मिसाइल में पाइलट के स्थान पर निर्देशन-तन्त्र होता है और यह तन्त्र जितना अच्छा होता है उतना ही अधिक वह मानव-मस्तिष्क की दक्षता के निकट आता है।

कोई भी निर्देशन-तन्त्र कभी भी मनुष्य से अधिक अच्छा नहीं हो सकता क्योंकि वह विचार बदल सकता है और उड़ान में होने वाली दुर्घटना को बचा सकता है। फिर भी कुछ अधिक विकसित तन्त्र इस आदर्श की काफ़ी हद तक पूर्ति करते हैं। अकस्मात् किसी मित्र-वायुयान के विरुद्ध फ़ायर किये जाने पर उनकी दिशा बदली जा सकती है बशर्ते वायुयान में आई.एफ़.एफ़. (Identification, Friend or Foe) रेडार फ़िट हुआ हो। उनका डिजाइन इस प्रकार तैयार किया जा सकता है कि यदि खराब मौसम के कारण अथवा किसी प्रकार की क्षति हो जाने से वे मार्ग से जरा-सा भी हट जायें तो उसे शीघ्र ठीक किया जा सके और वे इलेक्ट्रॉनिकी में रुकावट डालने की कोशिश करने वाली दुश्मन की रेडियो अथवा रेडार-युक्तियों की उपेक्षा कर सकें।

इसके अतिरिक्त कई निर्देशन-तन्त्र त्वरणों, अत्यधिक गर्मी और सर्दी तथा मानव पाइलट को मार देने वाली अन्य अवस्थाओं का सामना कर सकते हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनको ऐसे मिशनों पर भेजा जा सकता है, जहाँ से लौटने की कोई सम्भावना न हो।

निर्देशन-तन्त्र का मूल कार्य यह निश्चित करना है कि मिसाइल वहीं जा रहा है जहाँ उसको जाना है। स्पष्ट है कि किसी वायुयान पर आक्रमण करने के लिये बनाये गये मिसाइल का निर्देशन-तन्त्र उस निर्देशन-तन्त्र से भिन्न होगा जो किसी ऐसे बमवार मिसाइल में लगाया गया हो जिसका लक्ष्य एक बड़ा शहर हो।

वायुयान ऊपर को उड़ते समय अपनी दिशा बदल सकता है, किन्तु शहर की स्थिति पहले से ज्ञात है और वह नही बदल सकती है। इसी प्रकार हवा में एक वायुयान से दूसरे वायुयान में फ़ायर किया जाने वाला शस्त्र इतना छोटा होता है कि उसमें ऐसा निर्देशन-तन्त्र नही रखा जा सकता है जैसा 120 फुट लम्बा आई.सी.बी.एम. 5000 मील से अधिक दूर के लक्ष्य का मार्ग मालूम करने के लिये उपयोग करता है।

फलस्वरूप आजकल 11 से भी अधिक मूल किस्म के निर्देशन तन्त्रों का आम तौर पर इस्तेमाल किया जाता है और कुछ मिसाइलों में तो उड़ान की क्रमिक स्टेजों में दो अलग-अलग तन्त्रों से काम लिया जाता है।

**चुम्बकीय शीर्षक निर्देशन** (Magnetic Heading Guidance)—यह भू-पृष्ठ से भू-पृष्ठ पर मार करने वाले मिसाइलों के लिये अत्यन्त सरल तन्त्र है। इसमें किसी भू-उपस्कर की आवश्यकता नही होती है। इसका उपयोग 1944-45 में इंगलैंड के विरुद्ध फेंके गये V-1 'उड़न बम' में किया गया था। फेंकने से पहले मिसाइल को इस प्रकार सेट किया जाता है कि वह लक्ष्य की दिशा में ठीक-ठीक कुतुबनुमा द्वारा निर्देशित मार्ग (compass course) अपनाये और एक स्वचालित पाइलट द्वारा उसे इस मार्ग में बनाये रखा जाता है। अन्तरोंधन (interception) न होने देने के लिये मिसाइल में एक 'प्रोग्रामिंग' (programming) युक्ति भी रहती है ताकि सीधी रेखा में उड़ने के बजाय शीर्षक को उड़ान के दौरान एक या अधिक बार बदला जा सकें। पूर्व-निर्धारित समय के बाद एक क्लॉकवर्क यन्त्रावलि (clockwork mechanism) मिसाइल की ईंधन सप्लाई को काट देती है और मिसाइल ज़मीन पर गिर पड़ता है।

**तार कमान निर्देशन** (Wire Command Guidance)—यह सब निर्देशन तन्त्रों में से सरल है। इसका उपयोग आजकल भू-पृष्ठ से भू-पृष्ठ पर अथवा हवा से भू-पृष्ठ पर मार करने वाले सबसे छोटे प्रकार के टैंक-मार शस्त्रों के लिये ही होता है। जैसे ही मिसाइल लाँच स्थान को छोड़कर लक्ष्य की ओर जाता है वह अपने पीछे एक या दो बारीक तारों को खींच लाता है जो बॉबिनों (bobbins) से खुलकर उसे प्रचालक के नियन्त्रण-बॉक्स के साथ जोड़े रखते हैं।

मिसाइल को उसके लक्ष्य तक स्टियर करने के लिये सरल थम्बस्टिक (thumbstick) अथवा जॉयस्टिक (joystick) नियन्त्रण के द्वारा प्रचालक, तारों से वैद्युत सिगनल भेज सकता है। इस प्रकार का निर्देशन 2 मील के परास तक ही सीमित रहता है क्योंकि छोटे से मिसाइल में अधिक लम्बे तार को पैक करने में कठिनाई होती है और सामान्य तौर पर इसका प्रयोग तभी हो सकता है, जब लक्ष्य दिखाई दे। अपनी सीमाओं के भीतर यह दक्षतापूर्वक काम करता है और किसी भी रुकावट का इस पर असर नही पड़ता है। थोड़े से अभ्यास के बाद एक सामान्य प्रचालक स्थिर अथवा चलायमान लक्ष्यों पर 80 प्रतिशत सीधी मार कर सकता है।

**रेडियो कमान निर्देशन** (Radio Command Guidance)—यह तार कमान निर्देशन के समान ही होता है। केवल इतना अन्तर होता है कि इसमें सिगनलों को तारों के बजाय रेडियो के द्वारा भेजा जाता है जिससे इस तन्त्र का लम्बे परासों के लिये उपयोग किया जा सकता है। प्रचालक का उस स्थान पर होना ज़रूरी नहीं है जहां से मिसाइल को छोड़ा जाता है। यह स्थान युद्ध-क्षेत्र (combat area) के पीछे होता है। सामान्य तौर पर प्रचालक सीमाग्र पर होता है और मिसाइल को दूर से फ़ायर और नियन्त्रित करता है। यदि उसे लक्ष्य की ठीक-ठीक स्थिति मालूम हो तो उसका लक्ष्य को देख सकना ज़रूरी नहीं है क्योंकि वह मिसाइल के मार्ग को रेडार के पर्दे पर देखकर मालूम कर सकता है और उसे लक्ष्य तक स्टियर कर सकता है।

रेडियो कमान पर जाम होने (jamming) का शीघ्र असर पड़ता है और इसका उपयोग करने वाले मिसाइलों का डिज़ाइन इस प्रकार तैयार किया जाता है कि उनका विभिन्न रेडियो-आवृत्तियों पर प्रचालन किया जा सके। फ़ायर करने से ठीक पहले प्रेपित्र (transmitter) पर और मिसाइलों में लगे अभिग्राही (receiver) पर आवृत्ति सेट करने से प्रचालक दुश्मन को चयन की गई आवृत्ति को मालूम करने के लिये बहुत कम समय देता है। निर्देशन-तन्त्र को जाम करने से पहले उसे यह अवश्य कर लेना चाहिये।

रेडियो कमान निर्देशन युक्त कुछ मिसाइलों में आगे से एक छोटा सा टेलीविज़न कैमरा लगा होता है जो मिसाइल के सामने के दृश्य के चित्र को ज़मीन पर एक पर्दे को प्रेषित कर देता है। लक्ष्य को पर्दे के केन्द्र में रखने से
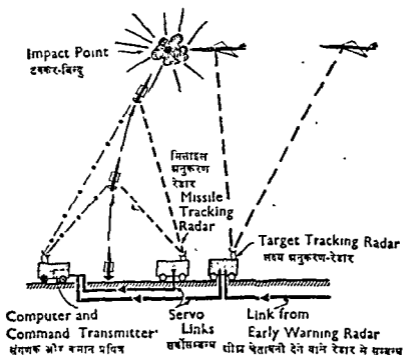
रेडार कमान निर्देशन

दृष्टि से बाहर होने पर भी प्रचालक मिसाइल को स्टियर कर सकता है जिससे इस तन्त्र का अधिक लम्बे परासों के लिये इस्तेमाल हो सकता है।

**रेडार कमान निर्देशन** (Radar Command Guidance)—रेडार कमान के मिसाइल में बहुत कम उपस्कर की आवश्यकता होती है। लेकिन जमीन पर बहुत-कुछ करना पड़ता है। इसमें 2 रेडार-प्रेपित्रों की आवश्यकता होती है। एक प्रेपित्र लक्ष्य को पकड़कर उस पर 'लॉक' (lock) कर देता है और उसकी गति और स्थिति को मालूम करता है। दूसरा प्रेपित्र फ़ायर करने के बाद मिसाइल पर 'लॉक' करता है तथा उसकी गति और स्थिति को मालूम करता रहता है। दोनों रेडार सेटों से प्राप्त आंकड़ों को एक संगणक में भेजा जाता है जो शीघ्र ही इस बात की गणना करता है कि मिसाइल को किस मार्ग पर जाना चाहिये जिससे लक्ष्य का अन्तर्रोधन उसे नष्ट कर दे। इसके बाद संगणक रेडियो कमान के द्वारा उपयुक्त संकेत को प्रेपित करता है, जिससे मिसाइल को किसी अन्तर्रोधन मार्ग में स्टियर किया जा सके।

इस प्रकार के निर्देशन का उपयोग भू-पृष्ठ से हवा में मार करने वाले अमेरिका के नाइक-एजेक्स (Nike-Ajax) नामक हवामार मिसाइल के लिये होता है। कहा जाता है कि उसके भू-उपकरण में 15 लाख पृथक् हिस्से हैं।

**रेडियो विमानचालन** (Radio Navigation)—यह दूसरा तन्त्र है जिसमें जमीन के ऊपर ज्ञात स्थितियों पर दो प्रेपित्रों की आवश्यकता होती है। यह रेडार कमान निशर्देन से बहुत सरल होता है। जमीन के ऊपर दो स्टेशनों द्वारा समान अन्तर पर प्रेपित रेडियो-सिगनलो को मिसाइल में लगा एक अभिग्राही पकड़ लेता है और दो सिगनलों के अभिग्रहण (reception) के समय का अन्तर ज्ञात कर प्रेपित्रों से अपनी दूरी मालूम कर सकता है। इस सूचना के साथ उस समय का मेल कर जितने समय तक वह वायु में रहा है वह अपनी ठीक स्थिति मालूम कर सकता है। यदि वह लक्ष्य के सही रास्ते पर न पड़े तो वह स्वतः रास्ते में स्टियर हो जाता है।

**किरणपुंज राइडिंग निर्देशन** (Beam Riding Guidance)—इस तन्त्र में मिसाइल प्रकाश के एक तग किरणपुंज के साथ अथवा लक्ष्य को 'लॉक किये' रेडियो-सिगनलों के साथ उड़ता है। इसका उपयोग मुख्यतः हवा में अथवा भू-पृष्ठ से हवा में मार करने वाले मिसाइलों में होता है। इसका यह फ़ायदा है कि इसमें रेडार कमान से कम उपस्कर की आवश्यकता होती है और यह एक समय में एक से अधिक मिसाइलों को नियन्त्रित कर सकता है। जैसे-जैसे दूरी के साथ किरणपुंज की चौड़ाई बढ़ती जाती है उसे वैसे-वैसे प्रेपित्र पर यथासम्भव तंग रखा जाता है और साथ ही फ़ायर करने के बाद मिसाइल को पिकअप करने तथा उसे मुख्य किरणपुंज में निर्देशित करने के लिये, जिसमें उसे उसके रेडियो-उपस्करों द्वारा रखा जाता है, एक बहुत अधिक चौड़ा 'एकत्र करने वाला' (gathering) किरणपुंज प्रेपित किया जाता है।

वायु से वायु में मार करने वाले एक विशेष प्रकार के तन्त्र के लड़ाकू

लक्ष्य रेडार
Target
Radar

लक्ष्य अनुकरण रेडार
Target Tracking Radar

Servo Link
सर्वो सम्बन्ध

Link from Early Warning Radar
शीघ्र चेतावनी देने वाले रडार से सम्बन्ध

Beam Riding Guidance
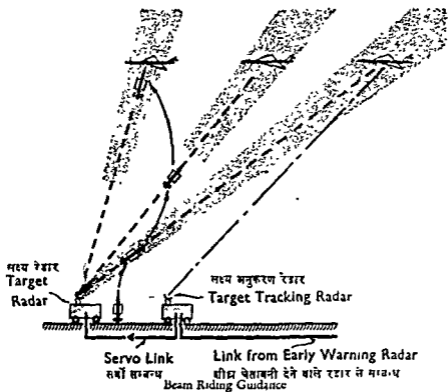
किरणपुंज राइडिंग निर्देशन
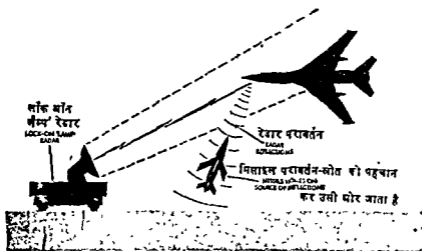
अर्द्ध-सक्रिय होमिंग

विमान के आगे के हिस्से में एक रेडार स्कैनर (scanner) लगा होता है जो आगे के आकाश में तब तक फैलता रहता है जब तक वह लक्ष्य को पिकअप कर उसे 'लॉक' न कर दे। जैसे ही लड़ाकू जहाज़ परास के भीतर आता है मिसाइल को फ़ायर कर उसे रेडार किरणपुंज में सकेन्द्रित कर देता है जिसके नीचे से होकर वह लक्ष्य की ओर उड़ जाता है। जैसे ही वह दुश्मन को नष्ट करने के लिये काफ़ी नजदीक चला जाता है उसके वारहेड को सामीप्यफ़्यूज़ (proximity-fuse) से विस्फोटित कर दिया जाता है।

**अर्द्ध-सक्रिय होमिंग (Semi-Active Homing)**—इस तन्त्र का उपयोग ब्रिटेन के दोनों ज़मीन में स्थित भू-पृष्ठ से हवा में मार करने वाले निर्देशित शस्त्रों के लिये होता है जिनका नाम रॉयल एअरफ़ोर्स ब्लडहाऊंड औरआर्मी थण्डरबर्ड है। इसमें एक शक्तिशाली भू-रेडार का उपयोग होता है जो लक्ष्य को पकड़कर उस पर 'लॉक' कर देता है और उसे बहुत तेज़ रेडार किरणपुंजों से प्रदीप्त करता है। ये रेडार किरणपुंज लक्ष्य से दूर वापिस उछल जाते हैं और इन्हें मिसाइल के अगले हिस्से में लगा अभिग्राही पकड़ लेता है। परावर्तन-स्रोत की ओर उड़कर वह लक्ष्य की ओर जाता है और टकराकर अथवा सामीप्य-फ़्यूज़ का इस्तेमाल कर उसे नष्ट कर देता है।

**सक्रिय होमिंग (Active Homing)**—अब तक बताये गये अधिकांश तन्त्रों के विपरीत यह तन्त्र मिसाइल में स्वय परिपूर्ण होता है। यह अधिकांश भू-उपस्करों से भिन्न होता है जिससे यह शस्त्र अधिक चलता-फिरता (mobile) हो जाता है किन्तु इससे स्वयं मिसाइल की जटिलता और आकार बढ़ जाता है।

सक्रिय होमिंग (active homing) अर्द्ध-सक्रिय होमिंग (semi-active homing) की भांति ही कार्य करता है। फ़र्क केवल इतना है कि सक्रिय होमिंग में मिसाइल में अपना पृथक् रेडार-प्रेपित्र और अभिग्राही होता है। जब उसे फ़ायर किया जाता है तो उसका प्रेपित्र सिगनलों को भेजता है जो लक्ष्य से वापिस उछलते हैं और अभिग्राही उन्हें पकड़कर नियन्त्रण-तन्त्र को यह बतलाता है कि मिसाइल को परावर्तन-स्रोत की ओर किस भांति ले जाया जाये।
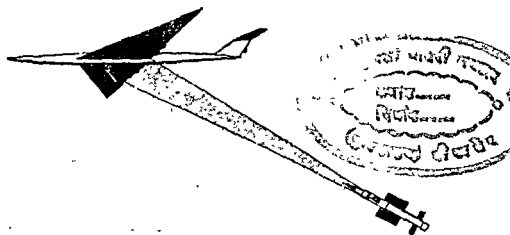
सक्रिय होमिंग

निश्चेष्ट होमिंग (Passive Homing)—इस तन्त्र को निश्चेष्ट होमिंग इसलिये कहते हैं कि इसमें शस्त्र पद्धति द्वारा किसी प्रकार का कोई भी सिगनल प्रेषित नहीं होता है। इसके बजाय मिसाइल में एक ऐसी युक्ति फिट रहती है जो लक्ष्य से उत्सर्जित अथवा लक्ष्य द्वारा उत्पन्न विशेष प्रकार की ऊर्जा अथवा विक्षोभ की ओर जाता है, लक्ष्य की ओर जाने वाले टारपीडो में फ़िट किया गया ध्वनि-तन्त्र इसका एक उदाहरण है, क्योंकि वह जहाज़ के इंजनों की आवाज़ को पकड़ लेता है और आवाज़ के स्रोत की ओर जाता है।

मिसाइलों में प्रयुक्त होने वाला सबसे साधारण निश्चेष्ट 'होमिंग तन्त्र' एक अवरक्त अथवा ऊष्मा-अन्वेषी (heat seeking) यूनिट होता है। इसमें एक बहुत छोटा यूनिट होता है जो मिसाइल के आगे के हिस्से में काँच की गुम्बद (glass dome) अथवा पैनलों (panels) के पीछे आरूढ़ रहता है जो लक्ष्य द्वारा उत्सर्जित ऊष्मा और विशेष रूप से इंजनों से *निकलने वाली* तप्त गैसों की ओर जाता है। यह इतना सुग्राही होता है कि साधारण घरेलू विद्युत् चूल्हे से प्राप्त ऊष्मा का एक मील से भी अधिक दूरी से पता लगा सकता है और इस पर जाम (*jamming*) का कोई असर नहीं पड़ता है। इसमें मुख्य कमी यह है कि उसकी अवरक्त आँख (infra-red 'eye') घने बादल में से नहीं देख सकती है जिससे अवरक्त मिसाइलों से युक्त लड़ाकू विमान में प्रायः अनिर्देशित अथवा रेडार होमिंग मिसाइल की बैटरियाँ भी होती हैं।
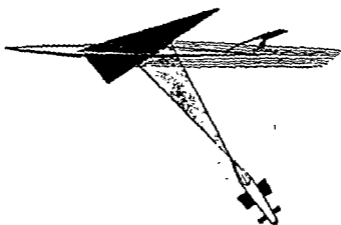
निश्चेष्ट होमिंग

प्राक्षेपिक-मार मिसाइलों (auti-ballislic missiles) के लिये एक अति उन्नत निश्चेष्ट होमिंग तन्त्र का विकास हो रहा है जिसके द्वारा संभवतः भविष्य में आई.सी.बी.एम. से रक्षा की जा सके। इस बात की सफलता आई.सी.बी.एम. की फ़ायरिंग का पता लगाने पर निर्भर करती है ताकि किसी संगणक की मदद से उसके प्रक्षेप-पथ (trajectory) के बारे में शीघ्र भविष्यवाणी की जा सके। उसके बाद भू-पृष्ठ से हवा में मार करने वाली निश्चेष्ट होमिंग युक्ति

से युक्त मिसाइल किसी अन्तरोधन मार्ग पर स्वतः ही छोड़ा जा सकेगा। युक्ति वैद्युत-चुम्बकीय विक्षोभों की ओर स्टियर होगी जो मिसाइल के वायुमण्डल में पुनः प्रवेश करने से उत्पन्न होंगे।

**खगोलीय निर्देशन (Celestial Guidance)**—इसे तारा-अनुकरणन (star-tracking) भी कहते हैं। यह पद्धति खगोल-संचालन (astro-navigation) की स्वचालित किस्म है जिसकी मदद से मल्लाह और वायुयान चालक शताब्दियों से अपना मार्ग मालूम करते आ रहे हैं। इसमें एक ही सिद्धान्त को 2 या 3 भिन्न रूपों में रखा गया है किन्तु मूल रूप से मिसाइल में लगा दूरदर्शी, चयन किये गये तारे को 'लॉक' कर लेता है और मिसाइल को उसकी पूरी उड़ान के दौरान तारे के साथ पूर्वज्ञात कोण पर रखता है। यद्यपि कोण नियत रूप से बदलता रहता है किन्तु यह गणना करना अपेक्षाकृत सरल है कि जब मिसाइल लक्ष्य के समीप पहुंचेगा तो कोण कितने अंश का होगा। फलस्वरूप निर्देशन-तन्त्र को इस प्रकार सैट किया जा सकता है कि जब दूरदर्शी में से तारा, मिसाइल की अपेक्षा इस कोणीय-स्थिति पर दिखाई देता है तो मिसाइल गोता लगा लेता है।

**जड़त्वीय निर्देशन (Inertial Guidance)**—यह सबसे अधिक उन्नत तन्त्र है। यह मिसाइल में स्वयं-परिपूर्ण होता है, जाम नहीं हो सकता है, और बहुत यथार्थ होता है। युद्धकालीन V-2 की एक किस्म में सरल रूप से इसका उपयोग किया गया था। अधिकांश आधुनिक लम्बे परास के बममार मिसाइलों के लिये इसका चयन किया गया है।

इसका मूल सिद्धान्त सरल है। इसमें त्वरणमापियों अथवा जाइरोस्कोपों का उपयोग होता है जो उड़ान के दौरान मिसाइल की दिशा में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तन को भी माप लेते हैं। यदि दिशा परिवर्तन के कारण वह अपने लक्ष्य की ओर के पूर्व-निर्धारित मार्ग से हट जाये तो निर्देशन-तन्त्र नियन्त्रण-उपकरणों को स्वयं हिलाकर उसे ठीक कर देता है। इसकी आवश्यक क्रिया-विधि इतनी जटिल है कि उसका इस पुस्तक में विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता।

अब तक यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि निर्देशित मिसाइल में पहली झलक में जो कुछ आभास होता है उनमें उसमें बहुत अधिक होता है। इसलिये अधिक चमत्कारपूर्ण रॉकेटों का वर्णन करने से पूर्व जल्दी से यह जान लेना उत्तम होगा कि तीन विशेष प्रकार के मिसाइलों को लक्ष्य तक पहुंचाने के लिये विभिन्न तन्त्र और अवयव एकसाथ किस प्रकार कार्य करते हैं।

# मिसाइलों की कार्य-विधि

सबसे पहले हम यह कल्पना करें कि हमने जिण्डविक (Jindivik) पाइलटरहित रेडियो-नियन्त्रित तथा जेट-चालित उन लक्ष्यों में से एक लक्ष्य का अन्तर्रोधन (intercept) करने के लिये रॉयल एग्ररफोर्स के एक लाइटनिंग लड़ाकू विमान में उड़ान करनी आरम्भ की है जिसका उपयोग यथार्थ विधि से ब्रिटिश मिसाइलों का परीक्षण करने के लिये होता है। अपने रेडियो में हम भू-नियन्त्रक (ground controller) की आवाज सुन रहे हैं जो कह रहा है कि हमें 87° कोण पर 50000 फ़ुट ऊँचे उठना चाहिये जिससे हम लक्ष्य की ओर जा सकें। लाइटनिंग के नुकीले नोज़-कोन में एग्ररपास (Airborne Interception Radar and Pilot's Attack Sight System) का स्कैनर (scanner) सामने आकाश के विस्तृत क्षेत्र की खोज करता है। शीघ्र उसके सिगनल हमारी उड़ान-रेखा के बाईं ओर दूर स्थित वस्तु से वापिस उछलते हैं। जिण्डिविक मिल जाता है और नियन्त्रण-कालम पर डाला गया थोड़ा-सा दाव लड़ाकू विमान को उसकी ओर लौटा देता है।

लक्ष्य को देखने की भी आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि एग्ररपास परास को माप लेता है, विक्षेपकोण मालूम कर लेता है और स्वतः ही हमें यह बतलाता है कि फ़ायरस्ट्रीक (firestreak) मिसाइलों को कब फ़ायर किया जाय जिन्हें धड़ के दोनों ओर पायलॉनों में ले जाया जाता है। उन्हें एक बार छोड़ देने के बाद जिण्डिविक नष्ट कर दिया जाता है। भले ही वह किसी प्रकार मुड़े अथवा घूमे, मिसाइलों की अवरक्त 'आंखें' उसके जेट-इंजन की गर्मी का अनुसरण करेंगी; इस प्रकार हम आक्रमण से विरत होकर लक्ष्य के विघटित होने से पहले ही अपने अड्डे पर लौट सकते हैं।

अब हम अमेरिका के ऊपर जाकर भू-पृष्ठ से हवा में फायर किये जाने वाले मिसाइल, बोमार्क, का परीक्षण होते हुए देखेंगे। वह उड़ान के लिये पिछले हिस्से पर खड़ा रहता है। इसके अलावा वह बिल्कुल वायुयान जैसा दिखाई देता है। उसके पिछले धड़ के अन्दर एक रॉकेट-मोटर होता है जो जमीन से दूर प्रघात कर उसे इतनी गति तक त्वरित कर देता है कि उसके शरीर के नीचे स्थित दोनों रैमजेट इंजन सामान्य उड़ान कर सकते हैं।

यूनाइटेड स्टेट्स और कैनेडा के हवामार मिसाइलों और लड़ाकू विमानों के समान, बोमार्क भी एक विशाल इलेक्ट्रॉनिक-यन्त्र द्वारा नियन्त्रित होता है जिसे एस.ए.जी.ई. (Semi-Automatic Ground Environment) कहते हैं। जब कभी कोई वायुयान अथवा मिसाइल उत्तरी अमेरिका के निकट आता है, इसे रेडार-शृखलाओं से सिगनल मिलते है और युद्ध के समय यह निर्णय

करता है कि लक्ष्य का अन्तरोधन पाइलटचालित वायुयान द्वारा करना चाहिये अथवा मिसाइल द्वारा। न किसी लक्ष्य की अवहेलना की जायेगी और न कोई आक्रमण दुबारा होगा। न प्रत्येक लड़ाकू स्टेशन और मिसाइल अड्डे के लिये अपना अलग नियन्त्रण-केन्द्र होने की आवश्यकता है क्योंकि एस.ए.जो.ई. दिशा-केन्द्र पूरे रक्षा-तन्त्र का नियन्त्रण कर सकते हैं।

हमारे परीक्षण बोमार्क को छोड़ने वाला फ़ायर-बटन उड़ान-स्थल से सैकड़ों मील दूर हो सकता है जिसका निकास पीछे से डायमण्ड आघात-तरंग पैटर्न के रूप में चलता है और मिसाइल पूर्णतया स्वत:निर्देशित होता है। लक्ष्य की स्थिति बताने वाले रेडार-सिगनल—जो इस अवस्था में बिना पाइलट वाला बमबार होता है— संगणक में भेजे जाते हैं जो बदले में ध्वनि की दुगनी से भी अधिक चाल से जमीन से 60000 फ़ुट ऊपर उड़ान कर रहे बोमार्क को निर्देशन-सिगनल प्रेषित करता है। मिसाइल के अन्दर रखा अभिग्राही प्रत्येक सिगनल को पिकअप कर उसे नियन्त्रण-तन्त्र को भेज देता है जो धुराग्रस्थ पक्ष-शिरा नियन्त्रण-पृष्ठों (pivoted wing tip-control surfaces) की सूक्ष्म गतियों के द्वारा मिसाइलों को लक्ष्य की ओर स्टियर करता है।

लगभग 400 मील तक की उड़ान के बाद बोमार्क का अपना सक्रिय रेडार 'होमिंग' कार्य करने लगता है। वह बमबार को 'लॉक' कर मिसाइल को ले जाकर उससे टकरा देता है।

अब हम कैलिफ़ोर्निया स्थित वण्डेनबर्ग एअरफ़ोर्स अड्डे से प्रशान्त महासागर में हज़ारों मील तक फैले परास पर एक माइन्यूटमैन आई.सी.बी.एम. का परीक्षण फ़ायरिंग देखेंगे। यह दृश्य किसी एटलस मिसाइल को छोड़ने से पहले के दृश्य से सर्वथा भिन्न है जिसका स्थान माइन्यूटमैन ने ले लिया था। ठोस-प्रणोदक मोटरों को अपनाने से केवल 60 फ़ुट लम्बे और एटलस के तिहाई भार से भी कम भार के शस्त्र से 7000 मील से भी अधिक परास प्राप्त हो सकता है। यदि शत्रु अचानक आक्रमण कर दे तो वह भेद्य भी नहीं होता है क्योंकि माइन्यूटमैन को जमीन में बने एक कंक्रीट छिद्र में रखा और फ़ायर किया जाता है। इस छिद्र को 'सिलो' (silo) कहते हैं। यहाँ तक कि उसे फ़ायर-कण्ट्रोल और सर्विस करने वाले लोग जमीन के नीचे बने कमरों में काम करते हैं और इस प्रकार न्यूक्लीय आक्रमण से सुरक्षित रहते हैं।

फिर भी इस प्रकार के विश्वसनीय और अपेक्षाकृत सरल मिसाइल के उपयोग के बावजूद कभी-कभी गड़बड़ी हो जाती है। इसलिये कोई तब तक आराम नहीं करता जब तक फ़ायरिंग बटन नहीं दबा दिया जाता और माइन्यूटमैन अपने चार प्रथम-चरण तुंडों से निकलने वाली ज्वालाओं पर सवार नहीं हो जाता। इसके बाद भी बहुत-कुछ करना शेष रहता है। रेडार द्वारा उसकी उड़ान का लगातार अनुसरण करना पड़ता है जिससे यह निश्चित हो जाय कि प्रत्येक वस्तु ठीक-ठीक काम करती है।

जैसे-जैसे मिसाइल ऊपर की ओर उठता जाता है, उसका जड़त्वीय निर्देशन-

तन्त्र पूर्व-निश्चित उड़ान प्रोग्राम का अनुकरण करता है जो मिसाइल को ऊर्ध्वाधर स्थिति से वक्र प्रक्षेप-पथ में स्टियर करने के लिये चार तुडों को झुका देता है। इससे मिसाइल सैकड़ों मील की ऊँचाई तक चला जाता है। शीघ्र प्रथम. चरण जलकर गिर जाता है। दूसरा चरण प्रज्वलित होता है और नोदन से मिसाइल की गति और ऊंचाई बढ़ जाती है। दूसरा चरण भी जलकर गिर जाता है और उसका काम समाप्त हो जाता है। तत्पश्चात् तीसरा चरण, जो अपेक्षाकृत छोटा होता है, वारहेड की गति को ध्वनि की गति का 22 गुना कर देता है। जब इसका मोटर काम करना बन्द कर देता है, तब वारहेड ऊपर को उठता है और भूमि से 700 मील दूर हो जाता है। गुरुत्व के आकर्षण के कारण उसकी ऊँचाई धीरे-धीरे घटती जाती है।

अन्त में गुरुत्व की विजय होती है और वह काले और लगभग वायु-शून्य अन्तरिक्ष में और ऊपर नहीं उठ सकता। वह वापस पृथ्वी की ओर आने लगता है और जैसे-जैसे वह नीचे की ओर आता है उसकी गति बढ़ती जाती है। यह आवश्यक नहीं कि अगला सिरा (नोज) ही पहले गिरे क्योंकि उसे सीधा रखने के लिये पर्याप्त वायुमडल नहीं होता है। जैसे ही वह अधिक सघन वायुमण्डल के निकट आता है वैसे ही नोज-कोन, जिसमें युद्धकाल में हाइड्रोजन-बम वारहेड या बहु-वारहेड होता है, गिर जाता है। शेष रॉकेट श्वेत तप्त धातु के रूप में पिघल जाता है। नोजकोन चमक के साथ आगे बढ़ जाता है किन्तु वह अपने विचित्र आकार और गुप्त डिजाइन के कारण सुरक्षित रहता है और फ़ायर बटन दबाने के करीब 20 मिनट बाद वारहेड एक कठोर छनछनाहटपूर्ण शब्द के साथ समुद्र में गिर जाता है।

लक्ष्य क्षेत्र के चारों ओर के स्थानों में नासिका-कोन को निकालने के लिये जहाज़ और वायुयान अन्दर को जाने लगते हैं। वण्डेनबर्ग ए.एफ.बी. पर फ़ायर अफ़सर अपनी रिपोर्ट के अन्त में लिखता है, 'उड़ान पूर्णतया सफल रही।'

आइये अन्त में यह अनुमान लगाये कि यदि अमेरिका के किसी सुरक्षित प्राक्षेपिक-मार मिसाइल (anti-ballistic missile—ABM) स्थल को किसी दुश्मन के आई.सी.बी एम. आक्रमण के विरुद्ध कार्य करना पड़ता तो क्या होता? माइन्यूटमैन मिसाइल अड्डों की रक्षा के लिये आवश्यक उपकरणों में एक मिसाइल स्थल रेडार (missile site radar—MSR), एक परिमिति अभिग्रहण रेडार (perimeter acquisition radar—PAR) और अनेक स्पारटन (Spartan) और स्प्रिट (Sprint) मिसाइल होते हैं। स्पारटन लम्बी परास का त्रि-पद रॉकेट होता है जो सैकड़ों मील के परास पर अपनी ओर आने वाले वारहेड को वायुमडल के ऊपर नष्ट करने के लिये बना होता है। स्प्रिट एक शक्वाकार (conical) उच्च वेग वाला रॉकेट होता है जो स्पारटन से बच निकले किसी भी वारहेड को कम ऊँचाई पर नष्ट कर सकता है।

सर्वप्रथम आक्रमण का पता पी.ए.आर. को लगेगा जो सुरक्षा स्थल (safeguard site) को सचेत करेगा और शत्रु के वारहेड का सामान्य मार्ग

बतायेगा। तत्पश्चात् एम.एस.आर. वारहेड की ठीक-ठीक स्थिति का पता लगायेगा और स्पारटन या स्प्रिट मिसाइल को उसे रोककर नाभिकीय विस्फोट द्वारा नष्ट करने का निर्देश देगा। सामान्यतः यह सम्पूर्ण प्रक्रिया स्वचालित होगी किन्तु ज़मीन पर लोगों की अथवा मित्र के उड़ते हुए वायुयान और मिसाइल की सुरक्षा के लिये किसी भी समय मनुष्य को हस्तक्षेप करना पड़ सकता है।
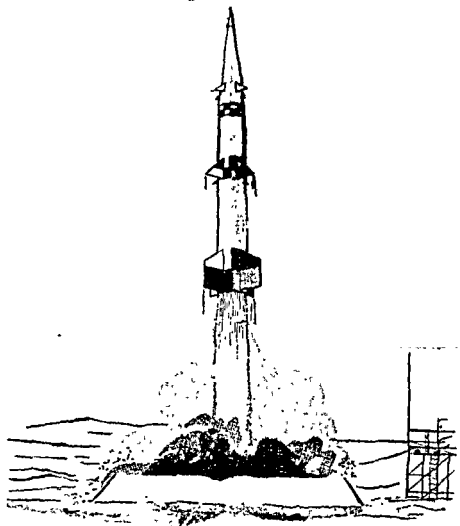
स्पारटन मिसाइल ज़मीन के नीचे स्थित लांचर को छोड़ रहा है।

प्रशान्त महासागर स्थित क्वाजान्लीन वलय (atoll) से एबी.एम. के परीक्षण फ़ायरिंग से सिद्ध हुआ है कि उपर्युक्त शस्त्र आई.सी.बी.एम. वारहेड को रोक सकते हैं। किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा रूस में सभी टार्गेटों को आई.सी.बी.एम. के आक्रमण से बचाने में इतना अधिक खर्च होगा कि इन दो देशों में कोई भी अपने अधिकांश शहरों और फ़ैक्टरी क्षेत्रों की रक्षा के लिये एबी.एम. का प्रयोग नहीं करता है। यही कारण है कि इस समय अमेरिका का ध्यान केवल अपने मान्यूटमैन स्थलों की रक्षा पर केन्द्रित है तथा पूर्व और पश्चिम की आई.सी.बी.एम. सेना किसी अन्य सम्भावित विश्वयुद्ध के प्रति उत्साहित नहीं है।

# अन्तरिक्ष के बारे में जानकारी प्राप्त करना

अन्तरिक्ष-उड़ान अब कोई सुदूर भविष्य का स्वप्न नहीं है। सच तो यह है कि उड़ान सम्बन्धी कुछ न कुछ कार्य प्रतिदिन होता रहता है। इसका यह मतलब नही कि हर कोई व्यक्ति अन्तरिक्षयान में सवार होकर चन्द्रमा और मगल के लिये रवाना हो रहा है। अधिकांश लोग अन्तरिक्ष को पृथ्वी से जितना दूर समझते हैं वह उससे बहुत नज़दीक है और कुछ वर्षों के अन्दर ही वायुयान-यात्री भी अन्तरिक्ष के तट पर सामान्य रूप में यात्रा करने लगेंगे।

यदि हम 25 वर्ष पहले की सोंचे तो हमें मालूम होता है कि उस समय औसतन एअरलाइनर 1000 से 10000 फुट की ऊँचाई पर उड़ान किया करता था। आजकल टर्बोप्रोप एअरलाइनर 20000 से 35000 फ़ुट की ऊँचाई पर उड़ान करते हैं जबकि जेट बहुधा 40000 फ़ुट से भी अधिक ऊँचाई पर उड़ान करते है।

केबिनो के अन्दर आर्मचेयर सीटों में अब यात्री पहले से अधिक आराम का अनुभव करते हैं। फिर भी यदि केबिनों में गरम हवा पम्प न की जाय तो हर कोई व्यक्ति परेशानी महसूस करेगा क्योंकि वायु-घनत्व के शब्दों में 40000 फुट की ऊँचाई पर उड़ने का मतलब है कि वे अन्तरिक्ष में पहुंचने के लिये तीन-चौथाई दूरी तय कर चुके हैं।

केबिन की पतली धात्विक दीवारों के दूसरी ओर बाहर की हवा का घनत्व भूतल की हवा के घनत्व का 24% होता है और उसका ताप हिमांक से 100° फारेनहाइट से भी कम होता है। ताप अधिक ऊँचाइयों पर भी इतना ही रहता है किन्तु वायु-घनत्व लगातार घटता जाता है और 100000 फुट की ऊँचाई पर उड़ने वाला पाइलट वायुमण्डल के 98·6 प्रतिशत के ऊपर होता है। 1·4 प्रतिशत इतना नगण्य है कि वह अपने को अन्तरिक्ष में समझ सकता है।

रॉकेट-यान बहुधा इतनी ऊँचाइयो पर उड़ान कर चुके हैं और शीघ्र ही यात्री अतिस्वनिक एअरलाइनर में 60000 फुट से भी अधिक ऊँचाई पर परिभ्रमण करने लगेंगे जो वायुमण्डल के 91 प्रतिशत से ऊपर होगा। फलस्वरूप इसके पहले कि कोई व्यक्ति चन्द्रमा में प्रथम यात्रा करने के लिये तैयार हो डिज़ाइन बनाने वालो और वैज्ञानिकों को अन्तरिक्ष में उड़ान सम्बन्धी अनेक समस्याओ को हल करना होगा।

हमारे शरीर की रचना ऐसी है कि वह भू-पृष्ठ पर ही काम कर सकती है जहाँ सांस लेने के लिये पर्याप्त वायु होती है और जहाँ हमारे ऊपर वायुमण्डल में विद्यमान सम्पूर्ण वायु का भार हमारी त्वचा के प्रत्येक वर्ग इच पर करीब 14·7 पौंड का दाब डालता है। 20000 फ़ुट की ऊंचाई पर वायुमण्डल इतना

'विरल' हो जाता है कि एअरमैन को ऑक्सीजन की आवश्यकता पड़ने लगती है। 30,000 फ़ुट से ऊपर ऑक्सीजन उपस्कर आवश्यक होता है।

इससे अधिक ऊँचाई पर ऑक्सीजन उपस्कर भी अपर्याप्त होता है। वायु-घनत्व में कमी होने से वायु-दाब सामान्य दाब (14.7 पौंड प्रति वर्ग इंच) का केवल दसवां रह जाता है और इस दाब पर काम करने के विरुद्ध एअरमैन का शरीर-विद्रोह करने लगता है। पहले रुधिर-धारा में विद्यमान नाइट्रोजन गैस के बुलबुले बनने लगते हैं जिससे एक कष्टदायी अवस्था उत्पन्न हो जाती है जिसे गहरे-समुद्री गोताखोर 'द बैण्डस्' (the bends) कहते हैं। 62,000 फ़ुट से ऊपर तो स्थिति और भी खराब हो जाती है। वहां दाब इतना कम हो जाता है कि यदि कुछ एहतियाती कार्रवाई न की जाय तो खून उबलने लगता है।

डिज़ाइन बनाने वालों को वायुमण्डलीय ऑक्सीजन की न्यूनता की ही नहीं बल्कि दाब की भी पूर्ति करनी पड़ती है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है एअरलाइनरों में इस कमी की पूर्ति के लिये वे केबिनों में हवा पम्प कर देते हैं जिससे दोनों समस्याएँ हल हो जाती हैं। एअरलाइनर जितनी अधिक ऊँचाई पर उड़ता है उसे उतना ही अधिक दाबानुकूलित करना पड़ता है और अधिक भरे बैलून की भांति फूटने से बचाने के लिये उसको उतना ही मज़बूत बनाना पड़ता है। 60,000 फ़ुट से अधिक ऊँचाई पर अतिस्वनिक एअर-लाइनरों में दाब बहुत अधिक रखना होगा और उनकी रचना कमज़ोर पड़ जाने के भय से केबिनों में कोई खिड़की नहीं रखनी होगी।
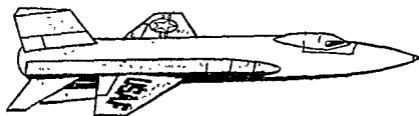
नॉर्थ अमेरिकन X-15

दाबानुकूलन का एक विकल्प भी है जो सैनिक वायुयानों में इस्तेमाल होता है। यह केबिन की मोटी दीवारों के अधिक भार से बचने और समाघात (combat) से केबिन में एकाएक छेद हो जाने पर पाइलट को बचाने अथवा अधिक ऊँचाइयों पर हवाई छतरी द्वारा बच निकलने के लिये इस्तेमाल होता है।

इसमें पाइलट को एक दाब-सूट (pressure-suit) पहनना पड़ता है। सूट ऐसा बना होता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह स्वतः सम्पीडित (compressed) वायु से भर जाता है और पाइलट के शरीर पर इतना दाब डालता कि पाइलट सांस ले सके और उसके खून में गड़बड़ न हो। वास्तव में वह

अन्तरिक्ष-सूट होता है जो एक बड़े और मजबूती से बने दावानुकूलित टोप (helmet) से युक्त रहता है।

विमान सम्बन्धी विकास से दावानुकूलित केबिनों और अन्तरिक्ष-सूटों में परिपूर्णता आई जिनकी अन्तरिक्ष-यात्रा में जरूरत पड़ती है। इस प्रकार की आरम्भिक यात्रायें नॉर्थ अमेरिकन X-15 जैसे रॉकेट-यानों के द्वारा की गई थीं। आज तक जितने भी वायुयान बनाये गये है उनमें से ये सबसे अधिक तेज़ चलने वाले और सबसे अधिक ऊँचाई पर उड़ने वाले हैं। ये 4,534 मी प्र.घं. से भी अधिक वेग से उड़े और 67 मील की ऊँचाई तक उड़ान की।

इससे अधिक ऊँचाइयों पर हवा की कमी के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याएँ होती हैं। उदाहरणार्थ वैज्ञानिक उपन्यास लेखकों ने कई वर्ष पहले से हमें भयकर उल्कापिडों के बारे में बताया है जो एक विचित्र गति के साथ अन्तरिक्ष में चलते हे और अपने मार्ग में आने वाले किसी भी अन्तरिक्षयान को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर सकते है।

उनकी विद्यमानता के बारे में हमें पहले से मालूम था, क्योंकि किसी स्वच्छ रात्रि को काफ़ी समय तक देखते रहने पर हमें जो शूटिंग स्टार (shooting star) दिखाई देते हैं वे उल्कापिडों के पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने पर जलने से उत्पन्न होते है। हमको तो केवल यह मालूम करना था कि वे कितना बड़ा खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। साथ ही हम यह भी जानना चाहते थे कि यदि हम वायुमण्डल के रक्षक आवरण को छोड़ दें तो क्या कॉस्मिक किरणों और अन्य विकिरणों का इतना अधिक तीव्रकारी प्रभाव होगा कि उनके शरीर पर पड़ने से कोई भी जीवित प्राणी मर जायेगा।

इन प्रश्नों का और साथ में कई अन्य प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये अनुसंधान-रॉकेटों (research rockets) पर बहुत बड़ी रकमें खर्च की गईं। विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका में सर्वप्रथम V-2 छोड़े गये जिनमें वारहेड की जगह उपकरण थे। मार्टिन कम्पनी ने अधिक अच्छे किस्म का द्रव-प्रणोदक चालित रॉकेट बनाया जिसका नाम वाइकिंग (Viking) था, जिनमें से एक 158 मील की ऊँचाई तक पहुंचा। इसके बाद अनेक अन्य रॉकेट बनाये गये।

आरम्भिक प्रयोग उत्साहजनक नहीं थे। उपकरणों द्वारा एकत्रित जो आँकड़े ज़मीन पर रिकार्ड रखने वालों के पास भेजे गये थे (रॉकेटों में विद्यमान रेडियो-सैटों द्वारा भेजे गये थे) उनसे विभिन्न ऊँचाइयों पर वायु-घनत्व, दाब और ताप का पता चल सकता था। कुछ अवस्थाओं मे नासिका-कोन को, जिसमें उपकरण रखे होते थे, हवाई छतरी द्वारा पुनः प्राप्त कर लिया गया था और जैसे ही रॉकेट 100 मील से अधिक ऊँचाई पर चले जाते थे हम उनके द्वारा लिये गये पृथ्वी के आश्चर्यजनक सिनेमा-फिल्मों को देख सकते थे। अब भी यदि किसी का ऐसा ख्याल हो कि पृथ्वी गोल नहीं है तो इन फ़िल्मों से उसके विचार

बदल जायेंगे क्योंकि उनमें से अनेक फ़िल्मों में पृथ्वी की वक्रता स्पष्ट दिखाई देती है।

उनमें से एक फ़िल्म मौसम-विज्ञानियों के लिये विशेष रूप से आकर्षक थी क्योंकि उससे पहली बार ज्ञात हुआ कि 100 मील की ऊँचाई से देखने पर प्रभंजन (hurricane) कैसा दिखाई देता है और शीघ्र यह स्पष्ट हो गया कि बादल-निर्माण सम्बन्धी और विस्तृत क्षेत्रों में उसकी गति सम्बन्धी चित्र प्रस्तुत कर संभवतः रॉकेटों की मदद से मौसम के बारे में अधिक यथार्थ भविष्यवाणी की जा सकती है।

जैसे-जैसे अधिक रॉकेट उपलब्ध होने लगे प्रयोगों का क्षेत्र भी बढ़ने लगा। वायुमण्डल की आर्द्रता, संघटन और भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों और भिन्न स्थानों पर गुरुत्व का भिन्न-भिन्न कर्षण, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में परिवर्तन, ध्रुवीय ज्योति और अन्तरिक्ष-विकिरण आदि बातों को मापने और उनका अध्ययन करने के लिये रॉकेट के नासिका-कोनों में नये उपकरणों और उपस्करों को बनाकर फ़िट किया गया। क्रमिक ऊँचाइयों पर कुछ रॉकेटों से धातु-लेपित कागज़ की पट्टियाँ फेंक दी गईं तथा अधिक ऊँचाइयों पर हवा की शक्ति और दिशा ज्ञात करने के लिये रेडार से उनका अनुसरण किया गया।

जैसे-जैसे 1957-58 का अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष निकट आता गया, अनुसंधान और भी तेज़ी से होने लगा। भू-भौतिकी वर्ष का यह उद्देश्य था कि पृथ्वी, उसका मौसम, उसका चुम्बकत्व, उसका आकार और ऊपरी वायुमण्डल तथा उसके चारों ओर के अन्तरिक्ष की अवस्थाओं के बारे में और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये सभी राष्ट्रों के वैज्ञानिक एकसाथ मिलकर काम करें।

ब्रिटेन, फ्रांस और जापान ने अपने योगदान के रूप में नये अनुसंधान-रॉकेटों को बनाने की योजना घोषित की। अमेरिका ने उत्सुक दुनिया को यह बताया कि उसे आशा है कि पृथ्वी के चारों ओर कक्षा में उपकरणयुक्त अनेक उपग्रहों को भेजकर रॉकेट की मुख्य कमी—कम समय तक उड़ान कर सकना—दूर कर दी जायेगी।

रूस ने इस अवसर पर कुछ नहीं कहा और 4 अक्तूबर, 1957 को मास्को रेडियो ने यह आश्चर्यचकित घोषणा की कि स्पुतनिक-1 18,000 मी.प्र.घं. की चाल से चुपचाप हमारे ऊपर चक्कर लगा रहा है। यह इतिहास की एक सबसे अधिक विचित्र घटना थी। मनुष्य ने 23 इंच के गोले के रूप में अन्तरिक्ष की अंधकारपूर्ण शून्यता में एक अन्य कदम रखा। किन्तु अब बहुत कम लोग ऐसे थे जिन्हें अब भी इस बात पर सन्देह था कि अन्तरिक्ष-उड़ान एक दिन सम्भव हो जायेगी।

ऊपरी वायुमण्डल अनुसंधान रॉकेट—स्काईलार्क।

उन्होंने कहा कि छोड़ने के बाद वह सवा मील ऊर्ध्वाधर दिशा में गया और उसके बाद एक 'पूर्वयोजित' निर्देशन-तन्त्र (संभवतः जड़त्वीय) के द्वारा नियन्त्रित होकर झुकने लगा। इसके शीघ्र बाद जब रॉकेट भू-पृष्ठ से 45 डिग्री का कोण बनाता हुआ 4,500 मी.प्र.घं. की चाल से यात्रा करने लगा तो प्रथम-पद मोटर रुककर गिर गया।

Sputnik 1 Trajectory स्पुतनिक-1 प्रक्षेप-पथ

स्पुतनिक-1 प्रक्षेप-पथ

अब उसकी गति को मंद करने के लिये बहुत कम वायुमण्डल था। तब दूसरे पद ने काम आरम्भ किया और स्वयं गिरने से पहले शीघ्र त्वरित होकर उसकी चाल 11,250 और 12,500 मी.प्र.घं. के बीच हो गई और उसका काम शीघ्र समाप्त हो गया। उसके बाद अन्तिम पद, जो अपनी नासिका में छोटे से स्पुतनिक को ले जा रहा था, एक वक्र प्रक्षेप-पथ में तब तक चलता रहा जब तक वह पृथ्वी से सैकड़ों मील दूर न हो गया और उसका मार्ग भू-पृष्ठ के समानान्तर न हो गया।

जिस स्थान से रॉकेट छोड़ा गया था वहाँ से छः सौ मील दूर वह क्रान्तिक क्षण आ पहुंचा। वह कक्षा में प्रवेश करने के लिये उपयुक्त ऊँचाई पर था किन्तु उसकी गति पर्याप्त नहीं थी। जब तक तृतीय-पद मोटर, जिसने इस स्थान से चलना आरम्भ किया, उसे 18,000 मी.प्र.घं. की चाल तक त्वरित न कर देता वह वापस पृथ्वी की ओर उस विशाल दीर्घवृत्त के निचले आधे हिस्से के साथ-साथ गिरने लगता जो उसने अन्तरिक्ष में अनुरेखित किया था।

तृतीय पद ने कार्य आरम्भ किया और जब उसका मोटर बन्द हो गया तो उसने स्पुतनिक को खोखले आवरण से बाहर फेंक दिया और वह वायुमण्डल से दूर अपनी तेज और खामोश उड़ान करने लगा।

उसके बाद ऐसी कोई बात नहीं थी कि वह छोटा-सा उपग्रह नीचे पृथ्वी पर गिर जाता। यह सोचना बिलकुल वैसा ही था जैसा यह सोचना कि किसी

# स्पुतनिक और एक्सप्लोरर

रूसी लोगों ने जब अपने प्रथम उपग्रह का नाम स्पुतनिक रखा तो उन्होंने ठीक ही नाम छांटा। स्पुतनिक का अर्थ है 'सह-यात्री' (fellow-traveller)। करोड़ों वर्ष से अन्तरिक्ष-यात्रा में प्राकृतिक उपग्रह, चांद, पृथ्वी का साथ देता आया है। 4 अक्टूबर, 1957 के बाद उसके पास 2 चांद हो गये क्योंकि दिन और सप्ताह गुज़रते गये और स्पुतनिक-1 ग्लोब के चारों ओर चक्कर लगाता रहा।

उस दिन तक किसी भी मानवनिर्मित वस्तु ने 6,800 मी.प्र.घं. से अधिक गति से यात्रा नहीं की थी। किन्तु वह छोटा-सा उपग्रह बिना किसी इंजन से शक्ति प्राप्त किये 18,000 मी.प्र.घ. की चाल से चक्कर लगा रहा था। जब उदय होने से पहले और अस्त होने के बाद सूर्य की किरणें उसके चमकदार खोल पर पड़ती थी तो आँखों से उसे स्पष्ट देखा जा सकता था।

वह वहाँ कैसे पहुंचा और किसकी सहायता से वहाँ बना रहा?

उड़ान के चित्र कभी भी प्रकाशित नहीं किये गये किन्तु रूसियों ने कहा है कि उन्होंने त्रि-पद (three-stage) रॉकेट का उपयोग किया था जो तर्कसंगत लगता था क्योंकि अमरीकियों ने भी त्रि-पद रॉकेट से ही अपने वैनगार्ड उपग्रह (Vanguard satellite) को अन्तरिक्ष में भेजने की योजना बनाई थी।

स्पुतनिक।

उन्होंने कहा कि छोड़ने के बाद वह सवा मील ऊर्ध्वाधर दिशा में गया और उसके बाद एक 'पूर्वयोजित' निर्देशन-तन्त्र (सम्भवतः जड़त्वीय) के द्वारा नियन्त्रित होकर झुकने लगा। इसके शीघ्र बाद जब रॉकेट भू-पृष्ठ से 45 डिग्री का कोण बनाता हुआ 4,500 मी.प्र.घं. की चाल से यात्रा करने लगा तो प्रथम-पद मोटर रुककर गिर गया।

Sputnik I Trajectory स्पुतनिक-1 प्रक्षेप-पथ

स्पुतनिक-1 प्रक्षेप-पथ

अब उसकी गति को मंद करने के लिये बहुत कम वायुमण्डल था। तब दूसरे पद ने काम आरम्भ किया और स्वयं गिरने से पहले शीघ्र त्वरित होकर उसकी चाल 11,250 और 12,500 मी.प्र.घं. के बीच हो गई और उसका काम शीघ्र समाप्त हो गया। उसके बाद अन्तिम पद, जो अपनी नासिका में छोटे से स्पुतनिक को ले जा रहा था, एक वक्र प्रक्षेप-पथ में तब तक चलता रहा जब तक वह पृथ्वी से सैकड़ों मील दूर न हो गया और उसका मार्ग भू-पृष्ठ के समानान्तर न हो गया।

जिस स्थान से रॉकेट छोड़ा गया था वहाँ से छः सौ मील दूर वह क्रान्तिक क्षण आ पहुंचा। वह कक्षा में प्रवेश करने के लिये उपयुक्त ऊँचाई पर था किन्तु उसकी गति पर्याप्त नहीं थी। जब तक तृतीय-पद मोटर, जिसने इस स्थान से चलना आरम्भ किया, उसे 18,000 मी.प्र.घं. की चाल तक त्वरित न कर देता वह वापस पृथ्वी की ओर उस विशाल दीर्घवृत्त के निचले आधे हिस्से के साथ-साथ गिरने लगता जो उसने अन्तरिक्ष में अनुरेखित किया था।

तृतीय पद ने कार्य आरम्भ किया और जब उसका मोटर बन्द हो गया तो उसने स्पुतनिक को खोखले आवरण से बाहर फेंक दिया और वह वायुमण्डल से दूर अपनी तेज और खामोश उड़ान करने लगा।

उसके बाद ऐसी कोई बात नहीं थी कि वह छोटा-सा उपग्रह नीचे पृथ्वी पर गिर जाता। यह सोचना बिल्कुल वैसा ही था जैसा यह सोचना कि किसी

रात चाँद हमारे ऊपर गिर जायेगा। यदि आप एक बाल्टी में आधा पानी भर-कर उसे हवा में एक वृत्ताकार पथ में घुमायें तो आप कुछ अन्दाजा लगा सकते हैं कि ऐसा क्यों होता है। यदि, आप बाल्टी तेज़ी से घुमायें और हैन्डल को मज़बूती से पकड़ें तो पानी बाल्टी के पेंदें में ही रहेगा, भले ही बाल्टी को उलट क्यों न दें। यदि आप धीरे-धीरे घुमाने लगें तो पानी आपके ऊपर गिर जायेगा और यदि आप हैण्डल छोड़ दें तो बाल्टी और पानी दोनों गिर जायेंगे।

इसमें **स्पुतनिक** की जगह पानी होता है। जिस गति से आप बाल्टी को घुमाते है वह पृथ्वी के चारो ओर कक्षा में **स्पुतनिक** की गति को प्रदर्शित करता है तथा आपकी बाह और हाथ गुरुत्व के कर्षण को प्रदर्शित करते हैं। यदि **स्पुतनिक** काफ़ी तीव्र गति से चले तो उसे अन्तरिक्ष में ले जाने वाला अपकेन्द्र बल (वह बल जो हैण्डल छोड़ देने पर बाल्टी को दूर ले जाता है) गुरुत्व को सन्तुलित करता है और उसे कक्षा में बनाये रखता है।

पृथ्वी से लगभग 238,000 मील ऊपर चन्द्रमा की कक्षीय ऊँचाई पर पृथ्वी के गुरुत्व के कर्षण को समाप्त करने के लिये 2,000 मी.प्र.घं. की गति पर्याप्त है। जिस ऊँचाई पर अधिकाश उपग्रह यात्रा करते है, लगभग 18,000 मी प्र घ की गति आवश्यक है क्योंकि जैसे-जैसे वह पृथ्वी के निकट आता है, गुरुत्व की शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

स्पष्ट है कि हम अपने उपग्रहों को बाहर अन्तरिक्ष में जितनी दूर भेज सकेंगे वे उतने ही उपयोगी होंगे। स्पुतनिक-1 से पहले भी हम पृथ्वी की निकट-वर्ती अवस्थाओं के बारे में भली-भाँति जानते थे। लेकिन वायुमण्डल के परे कैसा होता है उसके बारे में बहुत कम ज्ञान था। यदि हम उपग्रहों को काफ़ी दूर भेज दें तो वे हमेशा ऊपर ही रहेंगे जबकि 400 मील की ऊँचाई पर भी उनकी गति को कम करने के लिये लेशमात्र वायुमण्डल रहता है। और जैसे-जैसे उनकी गति कम होती है, गुरुत्वाकर्षण के कारण उनकी ऊँचाई कम होती जाती है जिस से वे पृथ्वी के निकट आने लगते हैं और अन्त में वायुमण्डल में जल जाते हैं।

सबसे पहले एक कठिनाई उपग्रह को ठीक एक वत्ताकार पथ में रखने की

थी। उदाहरणार्थ पृथ्वी से ऊपर स्पुतनिक-1 की कक्षा की अधिकतम दूरी (भूमि-उच्च, apogee) 588 मील थी किन्तु न्यूनतम दूरी (भूमि-नीच, perigee) केवल 142 मील थी जिससे वह अपने प्रत्येक चक्कर में थोड़े से वायुमण्डल में प्रवेश कर जाता था और फलतः वह उपग्रह वहाँ केवल तीन माह ही रुका रहा।

तुलना में, अमेरिका के छोटे से वैनगार्ड-1 उपग्रह ने एक दीर्घवृत्तीय कक्षा में प्रवेश किया जिसका भूमि-उच्च 2,453 मील और भूमि-नीच 409 मील है। उसका भूमि-नीच इतनी पर्याप्त ऊँचाई पर है कि उसकी गति बहुत धीरे-धीरे कम हो रही है और ऐसा सोचा जाता है कि वह एक हज़ार वर्ष तक ऊपर ही रहेगा।

अमेरिका और रूस द्वारा ऊपर भेजे गये उपग्रहों का आकार और उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। वैनगार्ड-1 सबसे छोटा है, जिसके छोटे से गोले का व्यास केवल $6\frac{1}{2}$ इंच और भार 4 पौंड से भी कम है। किन्तु यह कोई खिलौना नहीं है। निपुण इंजीनियरों ने $6\frac{1}{2}$ औंस भार वाले छोटे-छोटे रेडियो-प्रेषित्र, सौर-विकिरण को मापने की एक युक्ति जिसका भार केवल $2\frac{1}{2}$ औंस है, तथा अनेक अन्य छोटे-छोटे उपकरण बनाये। उपग्रह के खोल पर कांच की दीवारों से घिरे बन्द स्थान में सौर बैटरियों की एक श्रेणी है जो सूर्य के प्रकाश का अवशोषण कर उसे शक्ति में बदल देती है जिससे सामान्य बैटरियां फिर से चार्जयुक्त की जा सकती हैं। इस कारण वैनगार्ड-1 पृथ्वी को आंकड़े भेज रहा है अन्यथा उसने बहुत पहले ही आंकड़ों को भेजना बन्द कर दिया होता।

**स्पुतनिक-2** की वजह से बहुत प्रचार हुआ क्योंकि उसमें एक जीवित यात्री लैका (Laika) नामक कुतिया भी थी। कुतिया को भेजने का उद्देश्य यह मालूम करना था कि अन्तरिक्ष में जीवित रहा जा सकता है या नहीं। साथ ही लैका के हृदय की धड़कन, ताप तथा अन्य अवस्थाओं को भी मालूम करना था क्योंकि लैका 18,000 मी.प्र.घ. की चाल से एक छोटे से दाबानुकूलित कक्ष में
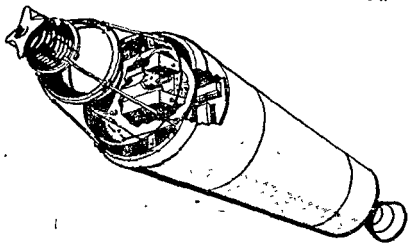
त्रि-पद रॉकेट में लगा स्पुतनिक-2

यात्रा कर रही थी। ज्ञात हुआ कि इन अवस्थाओं का उसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दुर्भाग्यवश रूसियों ने ऐसी कोई युक्ति नहीं निकाली थी जिससे लैका का कक्ष सुरक्षित वापिस वायुमण्डल में आ जाता और 8 दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई।

यह नहीं कहा जा सकता कि बाद में उसकी मृत्यु विकिरण के प्रभाव से हुई होगी और इतने समय तक उसके बचे रहने से जो आशा हुई वह भी तब
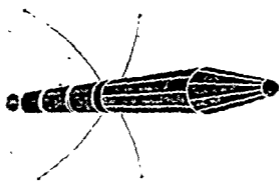
एक्सप्लोरर उपग्रह

जाती रही जब अमेरिका के टारपीडो के आकार वाले एक्सप्लोरर उपग्रह से यह मालूम हुआ कि पृथ्वी के कुछ सौ मील ऊपर तीव्र विकिरण की एक परत है।

इस रहस्यमय विकिरण की विद्यमानता उन कई बातों में से एक थी जो हमने पहले उपग्रहों से सीखी और यह स्पष्ट हो गया कि जैसे-जैसे हम अन्तरिक्ष के अन्य रहस्यों का अन्वेषण करेंगे हमें और भी अनेक विचित्र बातों का पता लगेगा।

## अन्तरिक्ष में मानव

अमेरिका के एक्सप्लोरर उपग्रहों द्वारा ज्ञात किये गये विकिरण-क्षेत्र जैसी खोजों से निराश होना स्वाभाविक था और मानव किसी दिन चन्द्रमा पर पहुंच सकेगा, इस पर शक होता है। फिर भी यह मूर्खता थी क्योंकि प्रत्येक उपलब्धि में ऐसी समस्याएँ आती हैं जिनको दूर करना पड़ता है। पृथ्वी के

निकट 660 से 760 मी.प्र.घं. की चाल से 'ध्वनिरोधी' (sound barrier) के बीच से सुरक्षित रूप से उड़ना सीखने से पहले कई वर्षों तक अनुसधान करना पड़ा, लाखों पौंड खर्च करने पड़े और कई जानें गई। इसलिये चाँद पर शीघ्र और आसानी से पहुंचने की आशा करना कठिन था।

दूसरी ओर V-2 रॉकेट की प्रथम सफल उड़ान के 15 वर्ष बाद ही अन्तरिक्ष में उपग्रह घूमने लगा था और केवल 3 वर्ष बाद ही रूसी तथा अमरीकी लोग कक्षा में आदमी भेजने की तैयारी करने लगे थे। इन बातों से ज्ञात होता है कि अन्तरिक्ष उड्डयन विज्ञान अथवा खगोलयानिकी का कितनी तेजी से विकास हो रहा है।

नये 'उत्तम प्रणोदकों' (super propellents) का विकास करने से पहले यह गणना कर ली गई थी कि अन्तरिक्ष-उड़ान के लिये निर्मित रॉकेटों का भार प्रत्येक पौंड आयभार (payload) के लिये 1,000 पौंड होगा। यही कारण था कि अमरीकी वैज्ञानिकों ने छोटे-छोटे हल्के उपकरणों को बनाने के लिये ऐसे कष्ट उठाये ताकि 21 पौंड भार वाले वैनगार्ड उपग्रह से पर्याप्त सूचना मिल सके। इस उपग्रह को 22,600 पौंड भार वाले विशेष रूप से निर्मित त्रि-पद रॉकेट द्वारा ले जाया गया था।

दूसरी ओर रूसी वैज्ञानिकों ने अपने स्पुतनिकों के लिये पहले और दूसरे पदों के रूप में अपेक्षाकृत बड़े रॉकेटों का उपयोग करने का निर्णय किया। इससे वे कक्षा में बड़े आकार और भार वाले उपग्रहों को रखने में समर्थ हुए।

पश्चिमी रॉकेट विशेषज्ञों को यह जानकर धक्का लगा कि **स्पुतनिक-1** का भार 184·3 पौंड था। **स्पुतनिक-2** का भार आधा टन था जो और भी आश्चर्यजनक था। 15 मई 1958 को छोड़े गये बड़े शकु आकार के **स्पुतनिक-3** का भार 1 टन 6 हण्डरवेट से कम नहीं था। यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि उसे 1,300 टन भार के रॉकेट द्वारा छोड़ा गया था जिसके सामने 120 टन भार वाला एटलस लॉच रॉकेट पटाखा जैसा दिखाई देता। अतः यह स्पष्ट था कि रूसियों ने भी रॉकेट का डिजाइन बनाने और निर्माण करने में विशेष प्रगति कर ली होगी। इन प्रगतियों और अमेरिका द्वारा की गई उन्नति के फलस्वरूप प्राप्त उपलब्धियों पर अब भी विश्वास नहीं होता है।

सन् 1958 में दोनों देशों ने एक उपग्रह को चन्द्रमा के चारों ओर कक्षा में भेजने का निर्णय किया। वैनगार्ड-1 अन्तरिक्ष में 2,453 मील तक भेजा जा चुका था। अब चन्द्रमा के उपग्रह को 238,000 मील ले जाना अधिक महत्त्वाकांक्षी नहीं था। किसी भू-उपग्रह को कक्षा में भेजने के लिये 18,000 मी.प्र.घं. की चाल की आवश्यकता होती है। वेग को 7,000 मी.प्र.घं. और बढ़ा देने से रॉकेट का वेग 'पलायन वेग' (escape velocity) तक पहुंच जाता है जो गुरुत्व के कर्षण को निष्प्रभावित करके चन्द्रमा की ओर बढ़ने के लिये आवश्यक है। यदि वेग को 1,000 मी.प्र.घं. और बढ़ाकर 26,000 मी.प्र.घ. कर दिया जाय तो 2 करोड़ 60 लाख मील दूर स्थित शुक्र ग्रह तक उड़ान करना सभव है।

अमेरिका ने सबसे पहले चन्द्रमा की ओर थोर-एबल (Thor-Able) को छोड़ा। यह 88 फुट ऊँचा त्रि-पद (three-stage) रॉकेट था जिसमें थोर आई.आर.बी.एम. प्रथम पद के रूप मे इस्तेमाल किया गया। पाइनियर-1 नामक आय-भार एक उपकरण-आधान (container) था जिसका व्यास 30 इंच और भार 85 पौंड था और उसमे एक अग्र-फ़ायरिंग ठोस-प्रणोदक रॉकेट था जो यात्रा के अन्त मे उसके वेग को मन्द करने के लिये रखा गया था ताकि वह चन्द्रमा के चारों ओर एक कक्षा में प्रवेश कर ले। पाइनियर-1 जिसे 11 अक्तूबर 1958 को छोड़ा गया था, अपने मार्ग से हट गया था किन्तु गुरुत्व के कर्षण से पृथ्वी के वायुमण्डल में वापिस आने से पहले उसने अन्तरिक्ष में 70,700 मील की यात्रा की। जब रूसी वैज्ञानिकों ने 796 पौंड भार वाला **ल्यूनिक-1** उपग्रह छोड़ा तो उन्हे अधिक सफलता मिली। उन्होंने उसे एक ऐसे उपर्युक्त मार्ग पर छोड़ा कि वह सूर्य के चारों ओर एक कक्षा में प्रवेश करने के लिये जाने से पहले चन्द्रमा से लगभग 4,600 मील की दूरी से गुज़रा।

इसके बाद अमेरिका का पाइनियर-4 सूर्य की कक्षा में गया किन्तु उसके बाद रूस ने एक आश्चर्यजनक कार्य किया। 14 सितम्बर 1959 को 34 घंटों की उड़ान के बाद **ल्यूनिक-2** चन्द्रमा पर जा गिरा और उसके पृष्ठ पर 'हथौड़ा और हसिया' चिन्ह वाली छोटी-छोटी पताकाओं को बिखेर दिया। मनुष्य ने पहली बार अन्तरिक्ष में अन्य वस्तु से ठोस सम्पर्क स्थापित किया। 4 अक्तूबर को **ल्यूनिक-3** को एक दीर्घ कक्षा में छोड़ा गया जिससे वह चन्द्रमा के चारों ओर
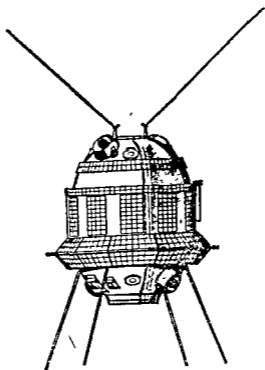
ल्यूनिक-3, जिसने चन्द्रमा का दूसरी ओर का फ़ोटो-चित्र लिया।

घूमने लगा। जाते हुए उसने स्वतः फ़ोटोग्राफ़ लिये और उनको डवलप कर उन्हें टेलीविज़न द्वारा 3 लाख मील दूर वापिस पृथ्वी पर भेजा। इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि से हमें चन्द्रमा के उस पार्श्व की रोमांचकारी झलक प्राप्त हुई, जो पृथ्वी से सदैव छिपी रहती है।
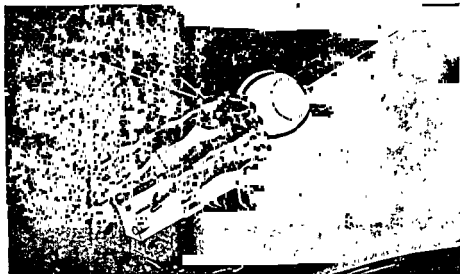
कक्षा में अन्तरिक्षयान वोस्तोक। केवल गोलाकार केबिन, जिसमें अन्तरिक्ष यात्री था, पृथ्वी पर लौटा।

15 मई 1960 को स्पुतनिक-4 कक्षा में चक्कर काटने लगा। यह सब स्पुतनिकों से बड़ा था। मास्को ने इसे अन्तरिक्ष-यान कहा। यह उसी प्रकार का था जैसा मनुष्य ने प्रथम कक्षीय उड़ान के लिये तैयार किया था। कुछ खराबी आ जाने के कारण रूसी लोग उसे वायुमण्डल में वापिस नहीं ला सके। 10 अगस्त के दिन अमेरिका को 'प्रथम' महत्त्वपूर्ण सफलता मिली जबकि उसने छोटे से डिस्कवरर-13 (Discoverer-XIII) उपग्रह कैप्सूल को कक्षा में से पुनः प्राप्त किया। किन्तु केवल 9 दिन बाद रूस ने अपने द्वितीय अन्तरिक्ष-यान स्पुतनिक-5 को वापिस प्राप्त किया; स्पुतनिक-5 में सभी जीवित प्राणी—बेलका और स्ट्रेलका नाम के दो कुत्ते, 40 मूषक (mice, छोटे चूहे), मक्खियाँ और अन्य सूक्ष्म जीव सुरक्षित लौट आये।

यूरी गगारिन के वोस्तोक अन्तरिक्षयान को कक्षा में भेजने के लिये उपयुक्त विशाल उड़ान वाहन। प्रथम पद में एक केन्द्रीय रॉकेट और चार 'परिवेष्ट' बूस्टर थे। प्रत्येक बूस्टर को चतुर्कक्ष इंजन से शक्ति प्राप्त हो रही थी जिससे कुल प्रथम-पद प्रणोद 1,125,000 पौंड हो गया था।
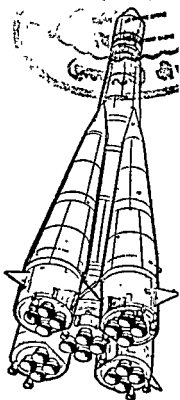
उसके बाद प्रथम अन्तरिक्ष-यात्री को दुनिया के चारों ओर कक्षा में भेजने में केवल समय का प्रश्न था। अमेरिका अभी मर्करी-मानवचालित उपग्रह कार्यक्रम में प्रगति कर रहा था। 31 जनवरी 1961 को हैम नामक एक चिम्पाजी को मर्करी उपग्रह में 155 मील की ऊँचाई तक उड़ाने के बाद सुरक्षित वापिस लाया गया। इस उड़ान में उसने अटलांटिक मिसाइल परास में नीचे की ओर 420 मील यात्रा की। मर्करी-कार्यक्रम से सम्बन्धित लोगों से कुछ अन्य लोगों ने आग्रह किया कि वे आदमियों को उसी प्रकार की ऊपर-नीचे की प्राक्षेपिक उड़ानों में भेजने की योजना छोड़ दें और सीधे कक्षा में भेजने का प्रयत्न करें। उन्होंने इस अनुरोध को न मानकर बुद्धिमानी का काम किया क्योंकि आदमी को अन्तरिक्ष से वापिस लाना और उससे एक सुयोजित कार्यक्रम के लिये वैज्ञानिक आंकड़े प्राप्त करना केवल प्रथम आने का प्रयत्न करने से अधिक उपयुक्त है।

अतः 12 अप्रैल 1961 को रूस के मेजर यूरी गगारिन ने इतिहास की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और साहसी यात्रा की। उन्होंने वोस्तोक-1 नामक $4\frac{1}{2}$ टन भारी अन्तरिक्षयान में बैठकर 108 मिनट में पृथ्वी का चक्कर लगाया। इस साहसिक यात्रा को 1 माह भी नहीं हो पाया था कि 5 मई को अमरीकी जलसेना के कमोदोर ऐलन शेपर्ड ने हैम की भांति एक मर्करी कैप्सूल में प्राक्षेपिक
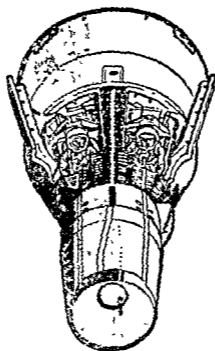
दो व्यक्तियों वाला अन्तरिक्षयान जेमिनी। कर्मीदल को उनकी निष्कासन सीटों पर दिखाने के लिये फलकें खुले हैं।

उड़ान पूरी की। नौ महीने बाद 20 फ़रवरी को अमेरिकन लेफ्टिनेंट-कर्नल जॉन ग्लेन ने पहली कक्षीय उड़ान कर मर्करी-कार्यक्रम को पूरा कर दिया।

तब से अनेक रूसी और अमेरिकन अन्तरिक्ष-यात्री पृथ्वी का चक्कर लगाने के बाद सफलतापूर्वक लौट आये हैं। मानवयुक्त अन्तरिक्ष-उड़ान एक दिनचर्या-सी बन गई है। यह कथन इस तथ्य से और भी स्पष्ट हो जाता है कि छठा रूसी अन्तरिक्ष-यात्री वैलेन्तीना तेरेश्कोवा नामक एक महिला थी।

12 अक्तूबर 1964 को रूस ने सबसे पहले कक्षा में ऐसा अन्तरिक्षयान भेजा जिसमें एक से अधिक आदमी बैठे थे। उस यान का नाम **वोस्खोद-1** था और उसमें 3 आदमी बैठे थे। अलेक्सी लिओनोफ नाम का रूसी अन्तरिक्ष-यात्री पहला व्यक्ति था जो 18 मार्च 1965 को अपने अन्तरिक्षयान से बाहर निकलकर 'अन्तरिक्ष में चला'। अमेरिका कभी रूस से बहुत पीछे न रहा। 23 मार्च 1965 को अमेरिका ने अपने दो आदमी वाले जेमिनी अन्तरिक्षयान की अत्यन्त सफल प्रयोगमाला आरम्भ की। इस यान का आकार मर्करी 'टी.वी. नली' कैप्सूल जैसा था किन्तु उससे बड़ा था। तीन महीनों के भीतर 3 जून को एडवर्ड ह्वाइट
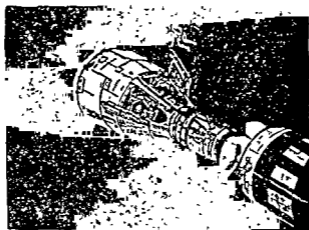
कक्षा में एक उपग्रह में 'डॉक' किया गया दो व्यक्तियों वाला अन्तरिक्षयान जेमिनी।

नाम का अन्तरिक्ष-यात्री अन्तरिक्ष में चलने वाला पहला अमेरिकन था। दिसम्बर में 14 दिन तक जेमिनी-7 में अन्तरिक्ष में रहकर फ्रेंक बोरमेन और जेम्स लोवेल ने रिकार्ड तोड़ दिये। इस अवधि में सबसे पहले उनका एक अन्य अन्तरिक्षयान से मिलन हुआ जो 15 दिसम्बर को पृथ्वी के ऊपर 160 मील की ऊँचाई पर काफ़ी समय से जेमिनी-6 के साथ चक्कर लगा रहा था।

अगला काम जेमिनी को कक्षा में चक्कर लगा रहे उपग्रह के साथ जोड़ना था। आरम्भ में इस काम में कुछ कठिनाई हुई। 16 मार्च 1966 को अजिना-8 (Agena-8) टार्गेट उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में छोड़ा गया। उसके एक किनारे पर एक एडेप्टर (adaptor) था जिसमें जेमिनी-8 के कर्मीदल को

अपना अन्तरिक्षयान जोड़ने का प्रयत्न करना था। जब उन्होंने लांच-पैड का स्फोट (blast off) किया तो वे अजिना की ही कक्षा में प्रवेश कर गये और दो यानों के बीच की दूरी कम करने लगे। यह काम बहुत आसान प्रतीत हुआ। धीरे-धीरे कमान पाइलट नील आर्मस्ट्रांग ने जेमिनी-8 के अगले सिरे को एडैप्टर में डाल दिया किन्तु उसकी रेडियो-रिपोर्टों से केप कैनेडी के नियन्त्रण-केन्द्र (control-centre) में जो विजय का आभास हुआ वह अल्पकालिक था।

जैसे ही दो यान जोड़े गये तो ऐसा लगा कि बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। मालूम नही कैसे जेमिनी तेजी के साथ चक्कर काटने लगा। मानो वह नियन्त्रण से बाहर हो गया हो। आर्मस्ट्रांग ने तुरन्त उचित कदम उठाया। उसने अजिना यान को पृथक् कर आपतकालीन नियन्त्रण-तन्त्र (emergency control system) को चालू कर दिया जो किसी सामान्य नियन्त्रण की अनुपस्थिति में स्वतः अन्तरिक्षयान को पृथ्वी पर वापिस ला सकता था। वास्तव में उसने सुरक्षित रूप से पुनः वायुमण्डल में प्रवेश ही नही किया अपितु प्रशान्त महासागर के पुनःप्राप्ति-क्षेत्र (recovery area) में 'टार्गेट' पर ठीक-ठीक उतरा भी।

जेमिनी-8 के चक्कर काटने का कारण उसके एक नियन्त्रण-रॉकेट के जाम का खुल जाना था। जेमिनी-9 इससे भी अधिक निराशाजनक अवरोध (snag) के कारण सफलता प्राप्त न कर सका। जब वह अपने टार्गेट के निकट आया तो उसे जोड़ा नही जा सका क्योंकि लांच के डॉकिंग एडैप्टर को ढकने वाले फेयरिंग (fairings) पृथक् नही हुए थे। अतः 18 जुलाई 1966 से पहले पूर्ण सफलता न मिल सकी। उस दिन अन्तरिक्ष-यात्री जॉन यंग (John Young) और माइकेल कोलिन्स ने जेमिनी-10 को अजिना-10 टार्गेट उपग्रह में जोड़ा ही नही बल्कि इस प्रकार परस्पर जुड़े दो यानों को जेमिनी-8 के साथ, जिसे 4 माह पूर्व नील आर्मस्ट्रांग ने थोड़े समय के लिये डॉक किया था, दुबारा जोड़ने के लिये अजिना-10 की टंकियो में बचे ईंधन का उपयोग भी किया। कोलिन्स अन्तरिक्ष में अजिना-8 तक गया और पृथ्वी पर अध्ययन करने के लिये उसमें से एक प्रयोग को निकाला।

शेष दो उड़ानों में जेमिनी ने आशातीत सफलता प्राप्त की। 12 सितम्बर 1966 को जेमिनी-11 ने अजिना-11 में जुड़कर टार्गेट उपग्रह के इंजन का उपयोग अन्तरिक्ष-यात्री चार्ल्स कोनार्ड और रिचर्ड गोर्डन को एक नई कक्षा में ले जाने के लिये किया जो उन्हें पृथ्वी से 850 मील की ऊँचाई पर ले गया। गोर्डन ने 44 मिनट अन्तरिक्ष में बिताये। इस प्रयोग मे चिन्ता का केवल मात्र कारण यह था कि उसने वहां जो कार्य किया उससे उसे इतना अधिक पसीना आया कि नमी ने उसके टोप (helmet) की खिड़की को धुंधला कर दिया और उसकी वर्दी के प्राणरक्षक तन्त्र को बहुत भारी कर दिया।

दो महीने बाद अंतिम मिशन में यह ज्ञात करने का काम ऐल्ड्रिन पर छोड़ दिया गया कि दो मिनट के आराम कालों (rest periods) को आरम्भ करने और कक्षा में अन्तरिक्षयान में घूमते समय हाथों से सहारा लेकर तथा

प्रतिरोधी फीतों (restraint straps) का उपयोग करने से किसी भी प्रकार की समस्या का सामना किये बिना अन्तरिक्ष में अधिक समय तक काम करना सम्भव है।

इस बात में अब कोई सन्देह नही रह गया था कि मनुष्य अन्तरिक्ष में काम कर सकता है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि प्रोजेक्ट जेमिनी ने एक अन्तरिक्षयान के दूसरे अन्तरिक्षयान से जुड़ने की तकनीक को यथार्थ (perfect) कर दिया था। अमेरिका के लिये अगला कदम चन्द्रमा के चारों ओर कक्षा में दो अन्तरिक्षयानों के चक्कर लगाते समय इस प्रकार एकत्रित होना था।

## चन्द्रमा की ओर

अच्छा वैज्ञानिक कभी भी अपनी उपलब्धियों से सतुष्ट नही होता है। उसे अधिक अनुसधान करते रहना चाहिये ताकि और भी अधिक आश्चर्यजनक आविष्कार हो सके। यही कारण है कि ल्यूनिक-3 द्वारा भेजे गये चन्द्रमा के अदृश्य पार्श्व के फोटोग्राफो को देखने से वैज्ञानिको में चन्द्रमा के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई। इसके लिये सर्वप्रथम अच्छे फ़ोटोग्राफों की आवश्यकता थी। उसके बाद ठीक-ठीक यह मालूम करना आवश्यक था कि चन्द्रमा किन-किन पदार्थो का बना है और क्या उसका तल अन्तरिक्षयान के भार को सह सकने के लिये काफी मजबूत है।

अमेरिका आरम्भ में बहुत महत्त्वाकांक्षी था। राष्ट्रीय वैमानिकी तथा अन्तरिक्ष प्रशासन (National Aeronautics and Space Administration) या 'नासा' ('NASA') ने, जो अमेरिका के अन्तरिक्ष-कार्यक्रमो पर नियन्त्रण रखता है, अनेक रेंजर अन्तरिक्षयानों को बनाने का आदेश दिया जो चन्द्र-तल के टेलीविजन चित्र लेने, चन्द्रमा के निकट पहुचने पर उसकी मिट्टी का सघटन (composition) मालूम करने और एक ऐसे उपकरण आधान का निष्कासित (eject) करने के लिये बनाये गये थे जिनकी गति पश्च-रॉकेटो द्वारा काफी कम की जा सके ताकि वे बिना झटके के जमीन पर उतर सकें।

पहले छोड़े गये पांच रेंजरों मे से किसी को भी इतना कठिन कार्य करने में सफलता न मिली। रेंजर-7 को कुछ सरल बनाने का निर्णय किया गया ताकि चन्द्रमा के तल पर गिरने पर वह केवल फोटोग्राफ ले सके। शीघ्र सारी परिस्थिति बदल गई। 24 जुलाई 1964 को लॉच किये गये सौर-सैलों के दो पख के समान पैनलों वाले इस शंक्वाकार अन्तरिक्षयान ने 43,16 फोटोग्राफ़ भेजे। कुछ फोटोग्राफो से चन्द्रतल पर कुछ ही फुट व्यास के गड्ढों का पता लगा।

17 फरवरी 1965 को रेंजर-8 छोड़ा गया। उसने और भी अच्छा काम किया। उसने समीप से शान्ति सागर (Sea of Tranquillity) के 7137

फ़ोटोग्राफ़ लिये जो अब तक टेलीस्कोप द्वारा लिये गये चित्रों से सैकड़ों गुना अच्छे थे। इससे 'नासा' को इतनी अधिक प्रसन्नता हुई कि उसने यात्रा की समाप्ति पर रेंजर-9 द्वारा लिये गये चित्रों को सीधे टेलीविज़न द्वारा जनता को दिखाने का निश्चय किया। फलस्वरूप जब अन्तरिक्षयान पृथ्वी से लगभग ढाई लाख मील दूर चन्द्रमा के परिचित गर्तों की ओर जाकर टकराया तो केप कैनेडी पर वैज्ञानिक औरत कनीशनों शियनों के साथ-साथ असख्य दर्शक भी उत्तेजित हो उठे।

रेंजर के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस दोनो ने अनेक बार चन्द्रमा पर मानवरहित अन्तरिक्षयान भेजे। इससे पहले 25 मई 1961 को स्वर्गीय राष्ट्रपति कैनेडी ने कांग्रेस से कहा था कि मेरे विचार में इस राष्ट्र को इस दशाब्दी की समाप्ति से पहले ही मनुष्य को चन्द्रमा पर उतारने और उसे सुरक्षित वापिस लाने के उद्देश्य को प्राप्त करने का वचन देना चाहिये। इस अवधि में कोई भी अन्तरिक्ष प्रायोजना को पूरा करने में कोई कठिनाई या धन की समस्या सामने नहीं आयेगी।

ऐसी आशा न थी कि रूस चुपचाप बैठा रहेगा और कोई प्रयत्न किये बिना अमेरिका को इतनी महान् उपलब्धि प्राप्त करने देगा। वास्तव में विश्वास करने का यह कारण था कि 2 अप्रैल 1963 और 3 दिसम्बर 1965 के बीच रूसी लाँच स्थलों से चन्द्रमा तक भेजे गये पाँच ल्यूना-अन्तरिक्षयानों को उपकरणों सहित बिना झटके के चन्द्रमा पर उतारने का इरादा था किन्तु इसमें सफलता न मिल सकी। सफलता मिलने में अधिक देर होने की सम्भावना न थी। इसी बीच अमेरिका ने चन्द्रमा पर दो विभिन्न प्रकार के रोबोट अन्तरिक्ष-यान (robot spacecraft) भेजने की तैयारी कर ली।

उनमें से एक, जिसका नाम ल्यूनर ऑर्बिटर था, चन्द्रमा के चारों ओर कक्षा में चक्कर लगाने और 30 मील से भी कम ऊँचाई से चन्द्रतल के फ़ोटोग्राफ लेने के लिये बनाया गया था। 10 अगस्त 1966 और 2 अगस्त 1967 के बीच एटलस-अजिना रॉकेटों से पाँच लाँच किये गये। इन सबमें सफलता मिली। ल्यूनर ऑर्बिटर-5 को चन्द्रमा पर गिराने से पहले, जिससे वह बाद की मानव-युक्त उड़ानों के लिये कोई संकट न पैदा कर दे, इन स्वचालित अन्वेषकों ने पूरे चन्द्रतल के 99 प्रतिशत भाग से अधिक अर्थात् कुल एक करोड़ 40 लाख वर्ग-मील क्षेत्र के फ़ोटोग्राफ़ ले लिये थे।

ल्यूनर ऑर्बिटरों द्वारा लिये गये कुछ प्राकृतिक दृश्यों के फोटोग्राफ़ निश्चय ही भयप्रद थे जिनमें उजाड़ पर्वतों की बड़ी-बड़ी शृंखलाएँ और गहरे निषिद्ध गड्ढे थे। स्पष्टत: ये ऐसे क्षेत्र थे जिनसे चन्द्रमा की पहली यात्रा के समय भावी अन्तरिक्ष-यात्री को बचना था। 'नासा' के वैज्ञानिकों ने ऑर्बिटरो द्वारा भेजे हज़ारों फ़ोटोग्राफ़ों का अध्ययन करने और उतरने के लिये अधिक उपयुक्त क्षेत्रों को मालूम करने में कई दिन व्यतीत किये।

उस समय तक अमेरिका के दूसरे प्रकार के मानवरहित चन्द्रयान, सर्वेयर, ने इस बात की पुष्टि कर दी थी कि चन्द्रतल 'मानवनिर्मित वस्तुओं का भार

सह सकने के लिये काफी मजबूत है। किन्तु इस बात को सबसे पहले सर्वेयर ने ही बताया हो ऐसी बात न थी।

चन्द्रमा के निकट ल्यूनर ऑर्बिटर

4 फ़रवरी 1966 को ब्रिटेन की जॉड्रेल बंक विकिरण वेधशाला ने प्रेस को कुछ फ़ोटोग्राफ दिये। वेधशाला के निदेशक सर बर्नार्ड लॉवेल के अनुसार ये फोटोग्राफ़ एक रूसी अन्तरिक्षयान ने भेजे थे जो एक दिन पहले बिना झटके के चन्द्रमा पर उतरा था। बाद में मालूम हुआ कि चित्रों के प्रिण्ट विकृत (distorted) थे क्योंकि उनकी ऊपरी परत चौड़ाई में दब गई थी। तो भी यह जॉड्रेल बंक वेधशाला की एक उपलब्धि थी क्योंकि सोवियत यूनियन ल्यूना-9 के उद्देश्य के बारे में अपनी परम्परागत चुप्पी साधे हुए था और उसने सही प्रिण्ट कुछ समय बाद वितरित किये। तब तक ब्रिटेन के फ़ोटोग्राफ़ पूरी दुनिया के प्रेस में छप चुके थे।

राजनीति और प्रेस चातुर्य (press tactics) की ओर ध्यान न दिया जाये तो ल्यूना-9 का चन्द्रतल पर बिना झटके के उतरना चन्द्रमा-अन्वेषण की प्रगति में एक बहुत बड़ा कदम था। उपकरण सहित पूरे अन्तरिक्षयान का भार 3269 पौंड था जिसमें पृथ्वी से चन्द्रमा के बीच मार्ग में यान की दिशा ठीक कर सकने वाला उपकरण और दिक्‌विन्यास युक्तियाँ (orientation

devices) का भार भी शामिल था। दिक्विन्यास युक्ति से यह बात सुनिश्चित होती थी कि यान के पश्च-रॉकेट द्वारा लगभग 46 मील की ऊंचाई पर फ़ायर करते समय वह चन्द्रतल के ऊर्ध्वाधर था।

पूरे अन्तरिक्षयान के चन्द्रमा पर उतरने से ठीक पहले उसने एक गोल उपकरण आधान (instrument container) बाहर की ओर फेंका जिसका ऊपरी आधा भाग चार पैनलों से ढका था। ये पैनल फूल की पखुड़ियों की भांति खुले जिससे पूरा पैकेज जमीन पर ऊर्ध्व स्थिति में खड़ा हो गया। तत्पश्चात् स्वत चार एरियल शलाकायें (rods) बाहर को निकलीं तथा उपकरण पैकेज में रखे टेलीविजन कैमरा ने चारों ओर के दृश्यों के फ़ोटोग्राफ़ लेकर उन्हें पृथ्वी की ओर भेजने का काम आरम्भ कर दिया। ये जॉड्रेल बैंक वेधशाला को प्राप्त होने वाले चन्द्रमा के पहले ऐतिहासिक चित्र थे।
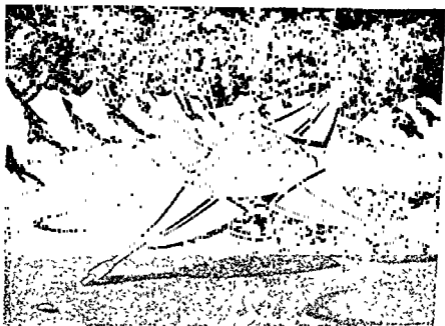
ल्यूना-9 जिसने चन्द्रतल से पहली बार फ़ोटोग्राफ़ भेजे

साढ़े छः वर्ष पूर्व ल्यूनिक-3 ने चन्द्रमा के अदृश्य पार्श्व के प्रथम बार चित्र लिये थे। किन्तु पूरे विस्तृत क्षेत्र के उच्च कोटि के तथा व्यापक चित्र प्रस्तुत करने का काम अमेरिका पर छोड़ दिया गया था। इस बार भी अन्ततः अपने अधिक अच्छे उपकरणों की सहायता से अच्छे वैज्ञानिक प्रमाण प्राप्त करने का श्रेय अमेरिका को ही मिला; यद्यपि इस कार्य में प्रथम होने की राजनैतिक प्रतिष्ठा उसको नहीं मिल पाई।

सुसंहृत वेलनाकार ल्यूना यानों की तुलना में अमेरिका का सर्वेयर अन्तरिक्ष यान भद्दा था। उसकी लम्बाई 10 फ़ुट और 'व्यास' 14 फ़ुट था तथा उसका धातु नली का बना त्रिभुजाकार ढांचा था जिसमें उपकरण अनियमित ढंग से रखे हुए थे। उसकी टांगें और एरियल प्रत्येक दिशा में फैले थे। वह अत्यन्त

सावधानी के साथ बनाया गया था ताकि भार कम से कम और उपयोगिता तथा विश्वसनीयता अधिक से अधिक हो।

तीनों टाँगों के सिरों पर भंजनीय छत्ते के समान पैड लगा था ताकि उतरते समय झटकों का यान पर कोई असर न पड़े। बीच के मस्तूल के ऊपर सूर्य की हल्की छाया के समान चपटे पैनलों का एक जोड़ा था। एक में सर्वेयर के उपकरण को शक्ति प्रदान करने के लिये 3,960 सौर-सैल थे और दूसरे पर एरियल था। बूमों के सिरों पर दो और छोटे ऐण्टेना लगे थे जो अन्तरिक्षयान के दोनों ओर फैले हुए थे। बीच के मस्तूल के एक ओर एक छोटा टेलीविज़न कैमरा इस प्रकार आरूढ़ था जिससे वह यान के चारों ओर एक मील की दूरी तक के चन्द्रतल के फ़ोटोग्राफ़ ले सके। साथ ही उसमें लगे दो भजनीय 'पैर' इस बात को बताने के लिये लगे थे कि वे चन्द्र-पृष्ठ पर कितने नीचे तक धसे थे।
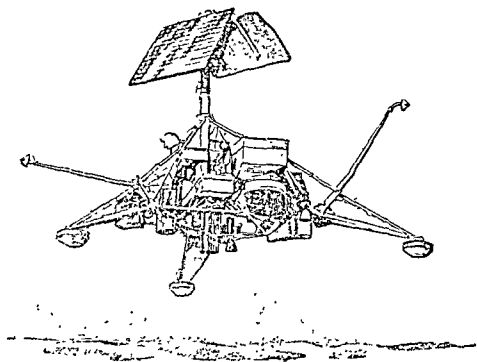
सर्वेयर का चन्द्रमा पर बिना झटके के उतरना

सुरक्षित और बिना झटके के उतरने के लिये सर्वेयर में एक उड़ान-प्रोग्रामर और अनुरूप कम्प्यूटर लगा था, उसकी ऊंचाई और अवरोहण-दर (rate of descent) मालूम करने के लिये रेडार लगे थे तथा चार रॉकेट-इंजन लगे थे। अन्तरिक्षयान की दिशा और गति को ठीक करने के लिये इन चार इंजनों में एक ठोस-प्रणोदक मुख्य पश्च-रॉकेट और तीन उपरोधीय (throttleable) द्रव-प्रणोदक वर्नियर इंजन थे। लाँच करते समय यान का कुल भार 2,194 पौंड था किन्तु प्रणोदकों के जल जाने और पश्च-रॉकेट के गिर जाने के बाद उतरते समय वह केवल 620 पौंड था।

सर्वेयर-1 को 30 मई 1966 को एटलस-सेण्टार बूस्टर द्वारा केप कैनेडी से छोड़ा गया था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि सेण्टौर स्टेज को दो प्राट एण्ड विट्नी RL10A-3 इजनों से शक्ति मिली थी जिनमें द्रव हाइड्रोजन ईंधन के रूप में जल रहा था। इन नये उच्च-ऊर्जा शक्ति सयन्त्रों की उपलब्धि से 'नासा' के अन्तरिक्ष-प्रोग्राम को इस महत्त्वपूर्ण समय में नई गति मिली थी।

2 जून को सफलतापूर्वक बिना झटके के उतरने (soft landing) के बाद सर्वेयर-1 ने अगले दो सप्ताहों में 10,000 से अधिक फ़ोटोग्राफ़ भेजे। ठडी दो सप्ताह की चन्द्र रात्रि के आरम्भ होने से पहले फ़ोटोग्राफ़ मिलने बन्द हो गये और यहाँ पर अन्तरिक्षयान की उपयोगिता समाप्त हो जानी चाहिये थी। फिर भी केप कैनेडी के वैज्ञानिकों ने यह जानने का निर्णय किया कि यान का टेलीविज़न कैमरा अंधकार की लम्बी अवधि के बाद भी काम करेगा या नही, यद्यपि इस प्रकार के पुनर्सक्रियण (re-activation) की पहले से कोई योजना न थी। सर्वेयर-1 ने प्राप्त सकेतों के अनुकूल अनुक्रिया की। वैज्ञानिको को यह बात अत्यन्त रुचिकर लगी कि सौर-सैल पैनल कुछ क्षतिग्रस्त-सा लग रहा था जो सम्भवतः उल्कापिंडों (meteorites) की बमबारी से हो गया था।

20 सितम्बर 1966 और 7 जनवरी 1968 के बीच चन्द्रमा पर छः और सर्वेयर भेजे गये। दूसरा और चौथा चन्द्रमा पर बिना झटके के न उतर सका किन्तु अन्य चारों ने हज़ारों फ़ोटोग्राफ़ भेजकर और चन्द्रतल की परीक्षा के लिये एक यान्त्रिक 'खुरचक' (scratcher) का और मिट्टी के अवयवों को ज्ञात करने के लिये एक रेडियोऐक्टिव 'बमबारी' युक्ति का उपयोग कर चन्द्रमा के बारे में हमारे ज्ञान में बहुत वृद्धि की।

सर्वेयरों की सबसे बड़ी उपलब्धि अमेरिका के अपोलो अन्तरिक्ष-यात्रियों को यह पूर्वचेतावनी देना था कि चन्द्रतल पर उतरने के लिये छाँटे गये स्थलों पर किस प्रकार की परिस्थितियाँ हो सकती हैं। इस प्रकार सर्वेयर-1 और सर्वेयर-3 को तथाकथित तूफान महासागर (Ocean of Storms) में उतारा गया था जबकि सर्वेयर-5 ने शान्ति-सागर (Sea of Tranquillity) की खोज की और सर्वेयर-6 साइनस मेडिग्राइ (केन्द्रीय खाड़ी) में उतारा गया। इस अन्तिम अन्तरिक्षयान ने 17 नवम्बर 1967 को एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया जबकि उतरने के आठ दिन बाद पृथ्वी से एक सकेत भेजकर उसके रॉकेट-इजनों को पुनः आरम्भ किया गया जिसके फलस्वरूप उसने 10 फ़ुट ऊपर उठकर तथा एक ओर कूदकर 8 फ़ुट की दूरी पर नई स्थिति ले ली। एक बार फिर से अन्तरिक्ष-यात्रियों को बहुमूल्य आँकड़े प्राप्त हुए। इस बार चन्द्रतल से ऊपर उठ सकने की सम्भावना का पता लगा।

अब इतिहास में सर्वाधिक साहसिक कार्य के लिये सब तैयारी हो चुकी थी। 'नासा' को इस बात में कोई सन्देह नही रह गया था कि वह मनुष्य को चन्द्रमा पर भेज सकता है तथा वहाँ मनुष्य उपयुक्त सुरक्षा के साथ उतर सकता है, जीवित रह सकता है और वापिस आने के लिये ऊपर को उठ सकता है।

# मनुष्य चन्द्रमा पर

अन्तरिक्ष अन्वेषण के आरम्भिक वर्षों में रूस इस कार्य में आगे था क्योंकि उसके बूस्टर रॉकेट 'नासा' को प्राप्त लाँच यानों से अधिक बड़े और शक्तिशाली थे। किन्तु सैटर्न ने सब बदल दिया।

सैटर्न परिवार का विकास 1958 के अन्तिम महीनों में आरम्भ हुआ। कुछ ही महीनों के बाद और रूसी अन्तरिक्ष रॉकेटों के साइज़ और आकारों के बारे में निश्चित रूप से मालूम होने से बहुत पहले अमेरिका का पहला उपग्रह कक्षा में चक्कर लगाने लगा।

इस श्रेणी का आरम्भ सैटर्न-I से हुआ। यह क्रिस्लर द्वारा एक S-I प्रथम स्टेज का (जिसे थोर रॉकेट में प्रयुक्त इजन के समान आठ रॉकेटडाइन H-1 इंजनों से शक्ति प्राप्त हो रही थी) और डगलस द्वारा एक S-IV द्वितीय स्टेज का (जिसे सेण्टौर में प्रयुक्त इजन के समान छः RL10 A-3 द्रव-हाइड्रोजन इंजनों से शक्ति प्राप्त हो रही थी) बनाया गया था। पूर्ण यान 190 फुट ऊँचे लाँच पर खड़ा था और उसका भार लगभग 1,165,000 पौंड (520 टन) था। फिर भी केवल चार या पाँच वर्ष पूर्व अमेरिका ने एटलस आई.सी.बी.एम. के विकास-कार्य को त्याग देने का निर्णय किया था क्योंकि तब ऐसा अनुमान था कि मिसाइल का भार 200 टन होगा और पहले स्टेज में ही उसे सात रॉकेट इजनों की आवश्यकता होगी। यदि एक अपेक्षाकृत छोटे H-बम वारहेड का विकास होने से तीन मुख्य इजनों वाले केवल 115 टन भार के रॉकेट का निर्माण सभव न होता तो शायद अमेरिका ने यह काम त्याग दिया होता।

सन् 1961 से 1965 के बीच दस सैटर्न-I सफलतापूर्वक छोड़े गये। उनमें से दो ने पृथ्वी की कक्षा में नकली अपोलो अन्तरिक्षयान छोड़े। उनके बाद 26 फरवरी 1966 को पहला सैटर्न IB-छोड़ा गया जिसमें S-IB निचले स्टेज में संशोधित H-1 इजन और S-IVB दूसरी स्टेज में 200,000 पौंड प्रणोद के लिये निर्धारित एक रॉकेटडाइन J-2 द्रव-हाइड्रोजन इंजन था किन्तु सैटर्न परिवार का वास्तविक सदस्य सैटर्न-V था। यह तीन स्टेज का रॉकेट इतना बड़ा था कि उसमें सैटर्न-IB की दूसरी स्टेज आयभार-वाहक तीसरी स्टेज के रूप में इस्तेमाल होती थी (देखिये **Frontispiece**)।

उड़ान के लिये ईंधनयुक्त अवस्था में सैटर्न-V का भार लगभग 2,725 टन और ऊँचाई 353 फ़ुट 5 इंच होती है। यह ऊँचाई लंदन स्थित सेंट पॉल गिरजाघर के क्रॉस की नोक से केवल 12 फ़ुट कम है। इसके बोइंग-निर्मित S-IC प्रथम स्टेज में विद्यमान पाँच रॉकेटडाइन F-1 इजनों में से प्रत्येक 1,500,000 पौंड प्रणोद उत्पन्न करता है। इनमें द्रव-ऑक्सीजन और मिट्टी-तेल प्रणोदक जलते हैं। नार्थ अमेरिकन रॉकवैल द्वारा निर्मित S-II दूसरी स्टेज में

पाँच J-2 इंजन होते हैं और फलस्वरूप दोनों ऊपरी स्टेजें द्रव हाइड्रोजन 'अति-ईंधन' से चलती हैं।

यह केवल आरम्भ था क्योंकि अपोलो-कार्यक्रम की प्रत्येक वस्तु का विशाल आकार होना था। यहाँ तक कि सैटर्न-V रॉकेट की S-II दूसरी स्टेज इतनी बड़ी होती है कि जिस स्थान पर उसे बनाया जाता है वहाँ से केप कैनेडी तक उसे एक विशेष बड़ी नाव में ले जाया जाता है। S-IVB तीसरी स्टेज वायुयान द्वारा ले जाई जाती है परन्तु केवल दुनिया का सबसे बड़े वायुयान, विशाल 'ऐरो स्पेसलाइन्स सुपर गुप्पी',…में ही सामान रखने का इतना अधिक स्थान था कि केवल उसी में इसे ले जाया जा सकता था।

केप कैनेडी में सैटर्न-V रॉकेटों को जोड़ने के लिये 552 फ़ुट ऊँचा धातु का गगनचुम्बी भवन, जिसे वर्टिकल असेम्बली बिल्डिग कहते हैं, बनाना पड़ा था। जब उसका प्रयोग किया गया तो वह दुनिया की सबसे बड़ी इमारत थी। इसके अतिरिक्त वहाँ बनने वाले प्रत्येक सैटर्न को उसके सर्विस टावर सहित 3½ मील दूर लॉच-पैड तक ले जाने के लिये दुनिया में अब तक निर्मित सबसे बड़ी मशीन 2,450 टन भार वाले क्रालर-ट्रान्सपोर्टर की आवश्यकता होती है जो आधे फ़ुटबॉल मैदान के बराबर बड़ा होता है।

इतनी बड़ी सरचनाओं की आवश्यकता चन्द्रमा पर केवल 22 फ़ुट 11 इंच ऊँचे और ईंधन सहित 14 टन भार के मकड़ी के समान आकार वाले ल्यूनर मॉड्यूल (Lunar Module—LM) को रखने के लिये हुई थी।

किन्तु ल्यूनर मॉड्यूल पूरे अपोलो-अन्तरिक्षयान के तीन रचक हिस्सों में केवल एक हिस्सा होता है। अन्य दो हिस्सों में एक शंकु के आकार का कमान मॉड्यूल (Command Module—CM) होता है जिसमें तीन आदमियों का कर्मीदल रहता है **और** दूसरा बेलनाकार सर्विस मॉड्यूल (Service Module—SM) होता है जिसमें ईंधन, सांस लेने के लिये ऑक्सीजन, विद्युत् सप्लाई और एक 22,000 पौंड प्रणोद वाला ऐरोजेट रॉकेट-इंजन होता है।

5 टन भार वाला कमान मॉड्यूल 10 फुट 7 इंच ऊँचा होता है। उसमें ऐलुमिनियम छत्ते का बना एक आन्तर दाब केबिन और जंगरोधी इस्पात छत्ते का बना बाहरी खोल होता है। यह उसी प्रकार के प्लास्टिक के बने तथा पृथक् होने वाले ऊष्मा परिरक्षक से ढका रहता है जैसा पुनर्प्रवेश के समय आई.सी.बी.एम. वारहेड की रक्षा करता है। इसका उपयोग सभी मानवयुक्त अन्तरिक्ष-यानों में किया जाता है। उसकी नासिका में एक रॉकेट-टॉवर होता है जो गिनती गिनते समय या उड़ान आरम्भ करते समय गम्भीर संकट आ जाने पर लाँच रॉकेट से पृथक् कर कमान मॉड्यूल को उठा सकता है।

लाँच-पैड पर कमान माड्यूल सैटर्न-V रॉकेट के ऊपर 23 फ़ुट लम्बे और 24 टन भार वाले सर्विस मॉड्यूल के आगे आरूढ़ रहता है और ल्यूनर मॉड्यूल सर्विस मॉड्यूल के रॉकेट-तड के नीचे सैटर्न के अगले भाग में रहता है। इसका यह अर्थ हुआ कि अन्तरिक्ष-यात्रियों को अन्तरिक्ष से चन्द्रमा की ओर उड़ान करते समय

ल्यूनर मॉड्यूल को जलचुकी सैटर्न तीसरी स्टेज से सर्विस मॉड्यूल की नासिका में स्थानान्तरित करना पड़ता है लेकिन यह काम उतना कठिन प्रतीत नहीं हुआ जितना लगता था।

अपोलो-कार्यक्रम को सबसे बड़ा धक्का 27 जनवरी 1967 को लगा जब पहली बार अन्तरिक्षयान के अन्दर बैठे आदमी मर गये, यद्यपि यान जमीन पर ही था। अन्तरिक्ष-यात्री विर्जिल ग्रिसम, ऐडवर्ड ह्वाइट और रोजर शैफी जो पहली कक्षीय-उड़ान के लिये चुने गये थे अपने अन्तरिक्षयान का परीक्षण कर रहे थे कि अचानक उनके कमान मॉड्यूल में आग लग गई और वे मारे गये।

9 नवम्बर सन् 1967 को सैटर्न-V रॉकेट द्वारा पहली बार अपोलो-अन्तरिक्षयान पृथ्वी की कक्षा में छोड़ा गया। वह भी मानवरहित था। जनवरी और अप्रैल 1968 में दो और मानवरहित परीक्षण किये गये। तत्पश्चात् 11 अक्तूबर को अमेरिका की पहली मानवयुक्त अन्तरिक्ष-उडान में अन्तरिक्ष-यात्री वाल्टर शीरा, वाल्टर कनिंघम और डॉन आइसीली को सटर्न-IB बूस्टर द्वारा अपोलो-7 में भेजा गया। उन्होंने आठ बार फायर कर सर्विस मॉड्यूल नोदन इजन का परीक्षण किया और पृथ्वी पर टेलीविज़न चित्र भेजे, जिन्हें सीधे व्यापारिक कार्यक्रमों पर प्रसारित किया गया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य कार्यों को भी इतने अधिक संतोषजनक ढंग से पूरा किया कि 'नासा' ने अपोलो-8 को चन्द्रमा के चारों ओर कक्षा में भेजने का निर्णय किया।

इस प्रकार फ्रैंक बोरमैन, जेम्स लोवेल और विलियम ऐण्डर्स पहले अन्तरिक्ष-यात्री थे जिन्होंने सन् 1968 के क्रिसमस की पूर्वसंध्या को चन्द्रमा के चारों ओर 10 चक्कर लगाकर केवल 70 मील की दूरी से चन्द्रमा के गर्तयुक्त तल को देखा। उस बार चन्द्रतल पर उतरने का कोई प्रयास नहीं किया गया; वास्तव में उस बार अन्तरिक्ष-यात्री ल्यूनर मॉड्यूल ले ही नहीं गये थे, किन्तु वह उड़ान अत्यन्त सफल रही और पृथ्वी को भेजे गये चित्र तब तक टेलीविज़न पर्दे पर देखे गये चित्रों में सबसे अधिक कौतूहलपूर्ण थे।

मार्च 1969 में जेम्स मैक्डीविट का कर्मीदल पूरे अपोलो-9 अन्तरिक्षयान को पृथ्वी की कक्षा मे ले गया। उसने ल्यूनर मॉड्यूल को S-IVB स्टेज के अन्दर से कमान मॉड्यूल की नासिका पर स्थानान्तरित किया और फिर ल्यूनर मॉड्यूल को जनक-यान से 113 मील दूर उड़ा ले गया जिससे यह सिद्ध हो गया कि पहले पृथक् होकर बाद में जुड़ सकना व्यावहारिक और सुरक्षित है।

लगभग दस सप्ताह बाद अपोलो-10 ने, जिसकी कमान थॉमस स्टैफ़ोर्ड कर रहे थे, इन प्रयोगों को चन्द्रमा की कक्षा में दोहराया। इसमें ल्यूनर मॉड्यूल को नीचे ले जाया गया, जहाँ से चन्द्रतल केवल 9 मील दूर था। चन्द्रमा पर उतरने के मिशन की व्यावहारिकता को सिद्ध करने के लिये प्रत्येक सम्भावित कार्य किया जा चुका था। 16 जुलाई 1969 को केप कैनेडी से अपोलो-11 को छोड़ा गया जिसमें नील आर्मस्ट्रांग, एडविन एल्ड्रिन और माइकेल कोलिन्स अन्तरिक्ष-यात्री थे। यह दूसरी दुनिया के लिगे मनुष्य की पहली यात्रा थी।

छोड़ने के 11 मिनट 50 सेकंड बाद अन्तरिक्षयान सुरक्षित रूप में पृथ्वी से 105 मील दूर कक्षा में पहुंच गया। पृथ्वी की $1\frac{1}{2}$ परिक्रमा करने के बाद यान को चन्द्रमा की ओर भेजने के लिये S-IVB स्टेज के इंजन को पुनः चालू किया गया। छत्तीस मिनट बाद कमान मॉड्यूल/सर्विस मॉड्यूल सज्जीकरण को जले S-IVB से पृथक् कर दिया गया ताकि ल्यूनर मॉड्यूल को निकालकर उसकी नासिका से जोड़ा जा सके। अपोलो-अन्तरिक्षयान चन्द्रमा की ओर अपने 73 घंटे के प्रक्षेप-पथ (trajectory) पर बढ़ता रहा। इस बीच उसे कोई शक्ति देने की आवश्यकता नहीं हुई। केवल एक बार दिशा ठीक करने के लिये सर्विस मॉड्यूल इंजन से 3 सेकंड के लिये स्फोट करना पड़ा।

ल्यूनर मॉड्यूल के अन्दर कार्यरत अन्तरिक्ष-यात्री

अपोलो सूट में अन्तरिक्ष-यात्री चन्द्रमा पर उपकरण सेट करते हुए
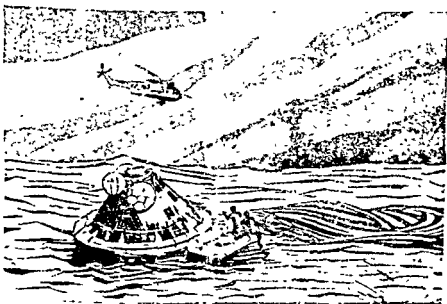
समुद्र में उतरने के बाद अपोलो कमान मॉड्यूल
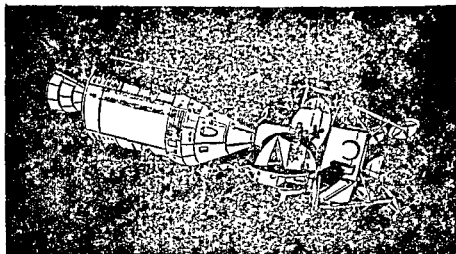
ल्यूनर मॉड्यूल को नासिका में लिये अपोलो-अन्तरिक्षयान चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा है।
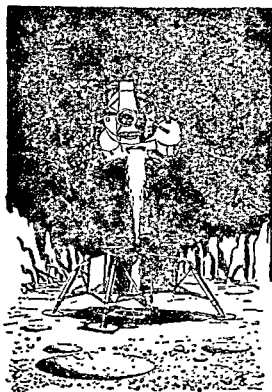
चन्द्रतल से उड़ान। जब ल्यूनर मॉड्यूल चन्द्रमा के चक्कर लगा रहे अपोलो अन्तरिक्षयान से जा मिलने के लिये चन्द्रतल से रवाना होता है तो ल्यूनर मॉड्यूल का आधार उसके लिये लांच-पैड का काम करता है।

19 जुलाई को लगभग दोपहर के समय केप कैनेडी के नियन्त्रण-कक्ष में खामोशी छा गई। अपोलो-11 का रेडियो-सम्पर्क टूट गया था क्योंकि वह चन्द्रमा के पीछे चला गया था। दृष्टि से ओझल हो जाने पर चन्द्रमा की कक्षा में
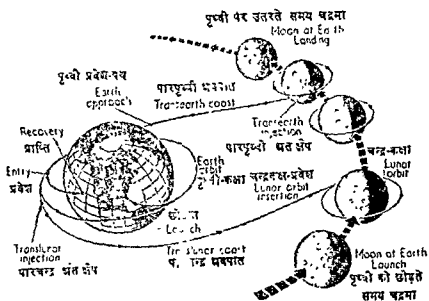
अपोलो मिशन का आरेख

रहने के लिये कर्मोदत को सर्विस मॉड्यूल रॉकेट फायर करना पड़ा। मिशन की पूर्ण सफलता ठीक-ठीक ज्वलन पर निर्भर करती थी। बहुत कम या बहुत अधिक ज्वलन से या तो अन्तरिक्षयान चन्द्रमा पर गिरकर नष्ट हो जाता अथवा दौड़ता हुआ सूर्य की ओर चला जाता और पूर्णतः नष्ट हो जाता। लेकिन सब ठीक-ठाक रहा। आरम्भ में चन्द्रतल से 69 से 196 मील दूर चन्द्रमा की कक्षा में प्रवेश करने के बाद एक और स्फोट किया गया जिससे अन्तरिक्षयान 69 मील ऊँचाई पर वृत्ताकार कक्षा में चक्कर लगाने लगा।

दूसरे दिन आर्मस्ट्रांग और एल्ड्रिन ने कठिनता से ल्यूनर मॉड्यूल में प्रवेश किया और साज का तस्मा बांधा जिसने 'सीट' का काम किया। उन्होंने अपने विचित्र यान को कमान मॉड्यूल से पृथक् किया। जब कोलिन्स ने देख लिया कि सब कुछ ठीक-ठाक है तो ल्यूनर मॉड्यूल के अवरोहण-इंजन (descent engine) को फ़ायर कर दिया। उस समय से कमान मॉड्यूल/सर्विस मॉड्यूल को **कोलम्बिया (Columbia)** कूट-नाम से और ल्यूनर मॉड्यूल को **ईगल (Eagle)** कूट-नाम से जाना जाने लगा।

ईगल के उतरने में लगभग 66½ मिनट लगे। अंतिम सेकंडों में बोल्डरों और चट्टानों से बचने के लिये आर्मस्ट्रांग ने ल्यूनर मॉड्यूल का नियन्त्रण अपने हाथों में ले लिया और अततः ल्यूनर मॉड्यूल चन्द्रतल पर उतर गया जबकि उसमें 2 प्रतिशत से भी कम अवतरण-प्रणोदक (landing-propellent) रह गया था। ब्रिटिश मानक समय के अनुसार 2118 बजे ढाई लाख मील की दूरी से प्राप्त सदेश ने बताया : 'रोशनियों से सम्पर्क करें, इंजन ठीक रुक गया है, यह

शान्ति-अड्डा है, ईगल उतर गया है।' 1960 से आरम्भ होने वाले दशक में मनुष्य को चन्द्रमा पर उतारने का, राष्ट्रपति कैनेडी का, वचन पूरा हो गया।

इन दो अन्तरिक्ष-यात्रियों ने चन्द्रतल पर 2 घंटे 16 मिनट बिताये। वे अनेक प्रयोग छोड़ आये और ईगल में चन्द्रमा की चट्टान और मिट्टी के नमूने लाये। तत्पश्चात् कई घंटे आराम करने के बाद उन्होंने आरोहण-इंजन (ascent engine) को फायर किया। ल्यूनर मॉड्यूल का ऊपरी आधा भाग परिक्रमा कर रहे कोलम्बिया से जुड़ने के लिये रवाना हो गया जबकि नीचे के आधे भाग ने लाँच-पैड का काम किया।
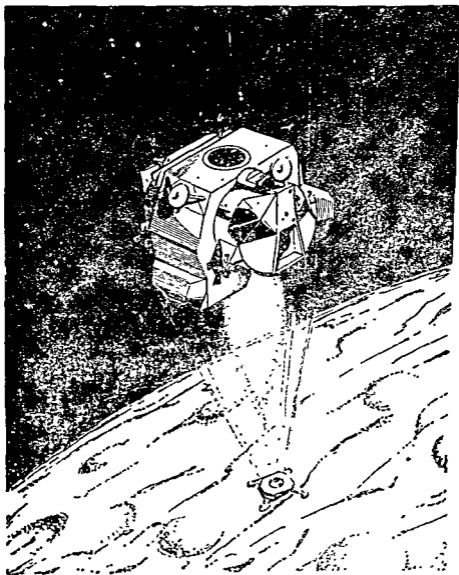
ईगल का चन्द्रतल से प्रस्थान
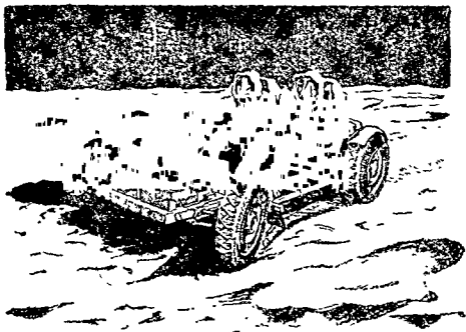
चन्द्रमा के अन्वेषण के लिये बोइंग-गाड़ी
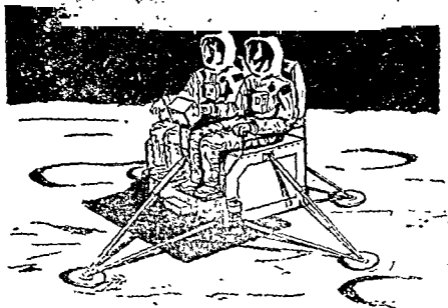
चन्द्र (ल्यूनर) स्कूटर

उसके बाद सब कुछ ठीक-ठीक होता रहा। ईगल कक्षा में कोलम्बिया से जुड़ गया। आर्मस्ट्रांग और ऐल्ड्रिन पुन: कोलिन्स से मिल गये और तब ल्यूनर मॉड्यूल को नीचे फेंक दिया। 22 जुलाई को तड़के अपोलो-11 को चन्द्र-कक्षा से बाहर निकालकर पृथ्वी की ओर भेजने के लिये सर्विस मॉड्यूल के इंजन को फ़ायर किया गया। पुन: प्रवेश से पहले सर्विस मॉड्यूल को भी फेंक दिया गया और अन्तत: 24 जुलाई को दोपहर बाद कमान मॉड्यूल प्रशान्त महासागर में उतर गया। यान अपने 195 घंटे के मिशन के आरम्भ में अनुमानित समय से केवल 30 सेकंड बाद में और पुन:प्राप्ति वायुयान वाहक (recovery aircraft carrier) यू.एस.एस. हॉर्नेट से लगभग 13 मील दूर उतरा।

इस साहसिक कार्य की समाप्ति यहीं पर नहीं हो गई; क्योंकि अन्तरिक्ष-यात्रियों को हेलीकोप्टर द्वारा समुद्र से उठाने के बाद अठारह दिन एकान्त में एक गतिशील क्वारंटीन कोच में बिताने थे ताकि चन्द्रमा से अन्तरिक्ष-यात्रियों के साथ आये रोगाणु अथवा वाइरस द्वारा पृथ्वी को दूषित करने की सम्भावना से बचा जा सके।
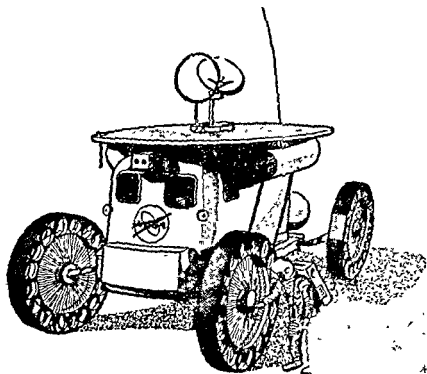
चन्द्रमा के भावी अन्वेषण के लिये गतिशील

तब से दूसरे अन्तरिक्ष ... अन्तरिक्ष
हैं और अपोलो-अवतरण का ... के चालू
को उनके अवतरण-स्थल से ... जाने
भार वाली और इधर-उधर ... गाड़ि
पहले ही दिया जा चुका है।
नहीं बल्कि आरम्भ था।

# पृथ्वी की कक्षा में

चन्द्रमा पर मानवयुक्त उड़ानों से उत्तेजित होकर हमें उन आश्चर्यजनक कार्यों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये जो पृथ्वी के समीप स्पुतनिकों और ऐक्सप्लोररों के मानवरहित उत्तराधिकारियों द्वारा किये जा रहे हैं और भविष्य में किये जायेंगे। जब छोटे से टेलस्टार संचार उपग्रह ने पहली बार अटलांटिक पार से टी.वी. चित्र भेजे थे तो किसे आश्चर्य नहीं हुआ? यह तो केवल आरम्भ था। उदाहरणार्थ जब इस प्रकार के उपग्रह पृथ्वी से 22,000 मील ऊपर छोड़े जाते हैं तो उनके एक चक्कर में ठीक 24 घंटे लगते हैं। यदि कक्षा भूमध्यरेखा के समांतर हो तो उपग्रह स्थायी रूप से एक ही स्थान पर रुके प्रतीत होते हैं जिसका कारण यह है कि पृथ्वी को भी अपने अक्ष पर एक पूरा चक्कर लगाने में 24 घंटे लगते हैं।
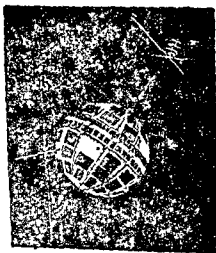
टे स्टार संचार उपग्रह

इस प्रकार की कक्षा में (जिसे समकालिक कक्षा कहते हैं) प्रवेश करने वाला पहला उपग्रह अमेरिकन सिन्कॉम-2 था जिसे 26 जुलाई 1963 को छोड़ा गया था। तब से अनेक उपग्रह समकालिक कक्षा में छोड़े गये है और अब यह बात निश्चित है कि दुनिया के अन्य भागों से टी.वी. चित्र हमारे पास उपग्रहों द्वारा आयेंगे। अतः हम दुनिया के किसी भी भाग में होने वाली बड़ी-बड़ी घटनाओं को देख सकेंगे।

रूस के संचार उपग्रहों (communications satellites) का नाम मोलनिया (लाइटनिंग) है। वे बहुत बड़े अन्तरिक्षयान हैं। उनमें एक बेलनाकार

केन्द्र संरचना और अनेक बड़े सौर-सैल पैनल होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय अन्तरिम संचार उपग्रह कन्सोर्टियम (International Interim Telecommunication Satellite Consortium) के लिये पश्चिमी देशों में बने इंटेलसैट्स (Intelsats) नगाड़े के आकार के होते हैं जिनकी अधिकांश परिधि सौर-सैलों से ढकी रहती है। इनमें से अटलांटिक, प्रशान्त और हिन्द महासागरों में स्थित 608 पौंड भार और 56 इंच व्यास वाले इंटेलसैट-3 विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं तथा 45 से अधिक देश उनका वाणिज्य के लिये उपयोग करते हैं। प्रत्येक इंटेलसैट-3 एकसाथ 1200 टेलीफ़ोन चैनेलों अथवा चार टेलीविज़न चैनेलों का संचालन कर सकता है।
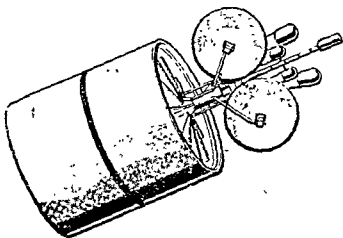
इंटेलसैट-4 उपग्रह
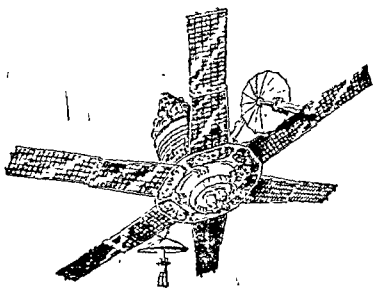
मोलनिया उपग्रह

पृथ्वी के अपने अक्ष पर चक्कर लगाने के कारण जो उपग्रह समकालिक कक्षा में नहीं होता है वह प्रत्येक क्रमिक कक्षा की अवधि में भिन्न-भिन्न स्थानों पर दिखलाई देता है। आरम्भ के स्पुतनिक जो भूमध्य रेखा के साथ 65° के कोण पर छोड़े गये थे, उनकी प्रत्येक क्रमिक कक्षा लंदन के अक्षांश पर पहले की कक्षा से 1000 मील पश्चिम में थी। फलस्वरूप किसी निश्चित अवधि में स्पतनिक उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव के बीच के सभी भू-भागों से गुज़रे। तब से अमेरिका और रूस दोनों ने अधिकाधिक उपग्रह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के चारों ओर कक्षाओं में छोड़े हैं और वे एक निश्चित अवधि में पृथ्वी के प्रत्येक भाग से गुज़रते हैं। इन उपग्रहों में लगे टोह लेने वाले कैमरों से हवाई अड्डे और रॉकेट स्थल आदि सैनिक संस्थानों की महत्त्वपूर्ण सूचना मिली है जिससे कोई वड़ा राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आकस्मिक आक्रमण नहीं कर सकता।
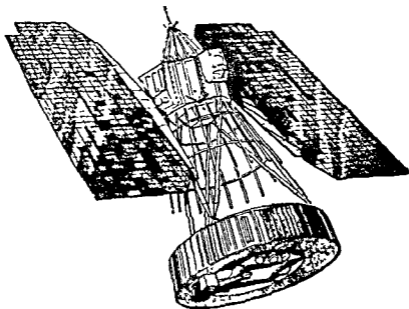
निम्बस मौसम उपग्रह

अन्ततः उपग्रहों का सबसे वड़ा उपयोग युद्ध की अपेक्षा विज्ञान के लिये होगा। अमेरिका की टाइरोस (Tiros—Television and Infra-Red Observation Satellite) माला और तत्पश्चात् निम्बस का उद्देश्य सैनिक संस्थानों का पता लगाना नहीं वल्कि वादलों का अध्ययन करना है जिससे मौसमविज्ञानी विस्तृत क्षेत्रों पर मौसम-विरचनाओं (weather formations) का अध्ययन कर सकें। भविष्य में इस प्रकार की सूचना से आजकल की अपेक्षा मौसम का अधिक यथार्थ पूर्वानुमान किया जा सकेगा।

उपग्रहों का उपयोग मानवयुक्त अथवा मानवरहित वेधशालाओं (observatories) के रूप में भी हो सकता है जिससे खगोलशास्त्रियों को पहली बार वायुमण्डल द्वारा अविकृत विश्व के स्पष्ट चित्र प्राप्त होंगे। उनका उपयोग मार्ग-निर्देशन में सहायता करने के लिये हो सकता है। मल्लाह
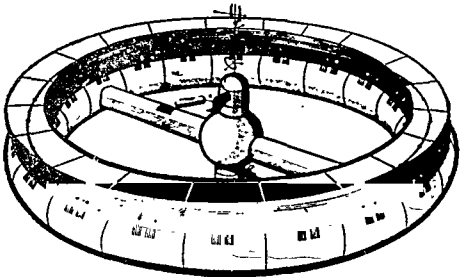
वर्नर फॉन ब्राउन के प्रसिद्ध अन्तरिक्ष स्टेशन का डिजाइन, जिसमें प्रयोगशालायें, एक वेधशाला और रहने के मकान दिखाये गये हैं। यह लचीले नाइलॉन और प्लास्टिक तन्तु का बना है। इसके अलग-अलग हिस्सों को कक्षा में ले जाकर अन्तरिक्ष में एकत्रित किया जा सकता है। इसका व्यास 250 फुट होगा।

शताब्दियों से तारों का उपयोग मार्ग-निर्देशन के लिये करते रहे हैं, परन्तु जब बादल होते हैं तब इसमें कठिनाई होती है। उपग्रहों द्वारा मार्ग-निर्देशन में यह कठिनाई नहीं होती क्योंकि जब आकाश में बादल हों तब भी रेडियो और रेडार द्वारा उनका ठीक-ठीक स्थान-निर्धारण किया जा सकता है।

पुनर्मिलन तकनीक द्वारा, जिसे सर्वप्रथम जेमिनी ने व्यवहार्य सिद्ध किया था, उनका उपयोग अन्तरिक्षयानों के लिये पुन: ईंधन प्राप्त करने वाले स्टेशनों के रूप में भी किया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि यदि अन्तरिक्षयान आवश्यक अधिकांश प्रणोदक उपग्रह पर प्राप्त कर सका तो पृथ्वी से रवाना होते समय उसका भार बहुत कम हो जायेगा जिससे लाँच करने वाले रॉकेटों का आकार और व्यय बहुत घट जायेगा।

प्राय: यह दावा किया गया है कि रूस चन्द्रमा तक पहुंचने के लिये अपोलो अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा अपनाई गई प्रत्यक्ष अवतरण तकनीकों (direct *landing techniques)* की अपेक्षा इस अप्रत्यक्ष विधि को अपनाने के पक्ष मे है। यही कारण हो सकता है कि रूसी अन्तरिक्ष-यात्री अपने पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे सोयूज अन्तरिक्षयान में व्यस्त हैं जबकि उनके अमेरिकी साथी पृथ्वी से चन्द्रमा तक की तथा वापसी यात्रा कर रहे हैं।

23 अप्रैल 1967 को छोड़े गये **सोयूज-1** के बारे में बहुत कम कहा गया। संभवत: यह ठीक भी था। अठारहवी परिक्रमा के समय जब उसने वायुमण्डल में पुन: प्रवेश किया तो मुख्य पैराशूट के फीते उलझ गये और वह जमीन से टकराकर टूट गया जिससे उसमें बैठे कर्नल व्लादिमीर कोमारोफ़ की मृत्यु हो गई। 1964 में **वोस्खोद-1** का निपुण पायलट कोमारोफ़ अन्तरिक्ष उड़ान में मरने वाला
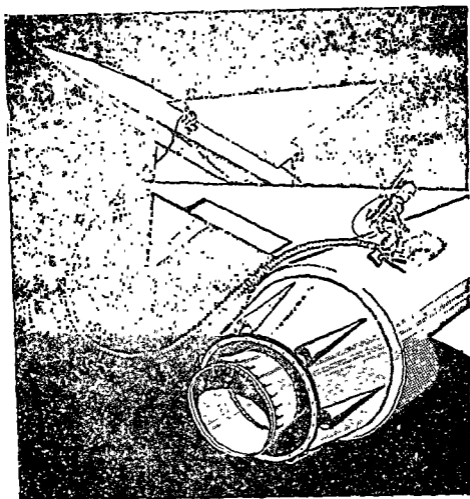
बिना आदमी वाले टैंकर से अन्तरिक्ष-रॉकेट को पुनः ईंधन जा रहा है। टैंकर को कक्षा में इसीलिये रखा गया है। आभासी तौर पर स्थिर होते हुए भी दोनों यान साथ-साथ 18 हज़ार मी.प्र.घं. की चाल से कक्षा में चक्कर लगा रहे हैं।

पहला व्यक्ति था और उसकी मृत्यु से सोयूज़ कार्यक्रम में विलम्ब हुआ। यह घटना ग्रिसम, ह्वाइट और शैफ़ी अन्तरिक्ष-यात्रियों की मृत्यु के कुछ ही माह बाद हुई। फलस्वरूप अपोलो कमान मॉड्यूल का डिजायन बदलना पड़ा।

अक्तूबर 1968 तक सोयूज़ कार्यक्रम पुनः आरम्भ नहीं किया गया; तब सोयूज़-3 में बैठे कर्नल गार्गी बिरिगोवोई ने अपने यान को एक दिन पहले छोड़े गये मानवरहित सोयूज़-2 के साथ क्रमशः दो बार सफलतापूर्वक जोड़कर भावी प्रगति की ओर संकेत किया।

अगली जनवरी में जब सोयूज़-5 और सोयूज़-4 को कक्षा में जोड़ा गया तो सोयूज़-5 के कर्मीदल के दो सदस्य अन्तरिक्ष में चलकर सोयूज़-4 में बैठे लेफ़्टिनेंट कर्नल व्लादिमीर शातालोफ से मिले। वे नये यान में ज़मीन पर उतर गये और मूल पाइलट-लेफ़्टिनेंट-कमोडोर बोरिस वोलिनोफ़ ने अकेले पुनः प्रवेश किया।

इसके बाद अक्तूबर 1969 में एकसाथ तीन **सोयूज** अन्तरिक्षयानों को अन्तरिक्ष में भेजने का कार्यक्रम था जिनमें सात अन्तरिक्ष यात्री बैठे थे। **सोयूज-6** में स्वत: निर्यात संधान प्रयोग (automatic vacuum welding experiments) किये गये और अन्तरिक्षयान द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा करते समय नई नौचालन तकनीकों (navigational techniques) की जाच की गई। अंतिम योजना दो या तीन **सोयूज** यानों को कक्षा में एकसाथ जोड़कर एक अन्तरिक्ष स्टेशन बनाने की हो सकती है। इनमें से प्रत्येक अन्तरिक्षयान की नासिका में एक बड़ी कर्मशाला (workshop) होती है तथा **कॉस्मॉस-186** और **कॉस्मॉस-188** मानवरहित अन्तरिक्षयानों के द्वारा रूस यह प्रदर्शित कर चुका है कि वह यानों को अन्तरिक्ष में जोड़ने की तकनीकों में पूर्णता प्राप्त कर चुका है। ये सफलतायें अकस्मात् प्राप्त हुई हों ऐसी बात नही है। रूस ने यानों को अन्तरिक्ष में स्वत: मिलाने और जोड़ने का काम अक्तूबर 1967 मे ही कर लिया था।
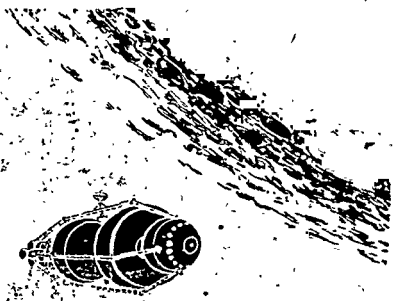
सम्भवत: अन्तरिक्षयान इस प्रकार दिखाई दे। वायुशून्य अन्तरिक्ष में स्ट्रीमलाइनिंग अनावश्यक है और भार से बचने के लिये उसे छोड़ा जा सकता है। सबसे आगे कर्मोदस के लिये स्थान है। उसके बाद दो बड़ी प्रणोदक टंकियां और उनके पीछे रॉकेट-मोटर हैं।

'नासा' के नये स्काईलैब कार्यक्रम (Skylab Programme) के अंतर्गत अमेरिका की भी 1970 से आरम्भ होने वाले दशक के आरम्भिक वर्षों में एक बहुत बड़ी कर्मशाला को कक्षा में भेजने की योजना है। अपोलो-प्रायोजना के अंतर्गत बनाये गये उपकरण का उपयोग करने के उद्देश्य से पहला काम सेटर्न-IB लांचर की मदद से एक अपोलो अन्तरिक्षयान और उसके तीन आदमियों वाले कर्मीदल को पृथ्वी की कक्षा में भेजना होगा। कुछ दिनों बाद दूसरे सेटर्न-IB की S-IVB दूसरी स्टेज का परिक्रमा कर रहे अपोलो के साथ मिलन होगा। तब अन्तरिक्ष-यात्री अन्तरिक्ष में चलकर खाली S-IVB में जायेंगे और उसे परिक्रमा कर रही कर्मशाला के रूप में सुसज्जित करेंगे। ऐसी आशा है कि
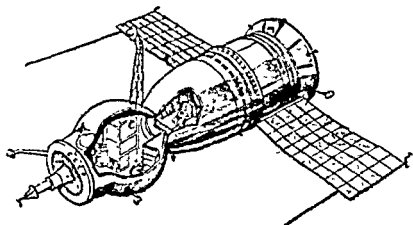
सोयूज का कटा भाग
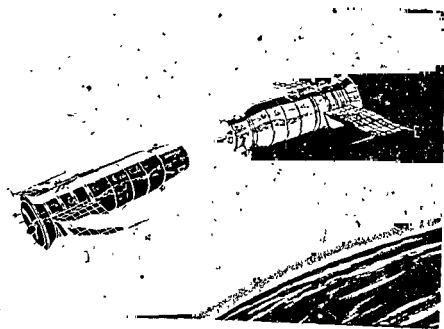
कॉस्मॉस-186 और कॉस्मॉस-188 का अन्तरिक्ष में स्वतः जुड़ना

बाद में एक अन्य सैटर्न द्वारा एक बहुत बड़े सौर टेलीस्कोप को कक्षा में भेजकर SIVB कर्मशाला से जोड़ दिया जायेगा और इस प्रकार एक अन्तरिक्ष वेधशाला (Space Observatory) बन जायेगी।
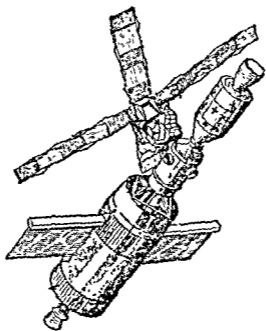
टेलीस्कोप युक्त स्काइलैब कक्षीय कर्मशाला

आने वाले वर्षों में इस प्रकार की कक्षीय प्रयोगशालाओं और कर्मशालाओं की संख्या, आकार और महत्त्व निश्चित रूप से बढ़ेगा और अततः एक [illegible] के लिये हमसे बहुत [illegible] पुराना स्वप्न साकार हो सकता है।

अमेरिकी ऐसे यान का डिजायन बनाने का अथक प्रयत्न कर रहे हैं जो पृथ्वी और इस प्रकार के अन्तरिक्ष स्टेशनों के बीच आदमियों, सामान और उपकरण को ला-लेजा सकें। बिना पंख वाले अथवा लगभग बिना पंख वाले डेल्टा वायुयान का आकार सर्वाधिक आशाजनक लगता है जो अतिध्वानिक (hypersonic) वेग से पृथ्वी के वायुमण्डल में सुरक्षित रूप से पुनः प्रवेश कर सकता है और इस पर भी जमीन पर स्थित हवाई अड्डों पर अभिलम्बतः उतरने के लिये वह अपने पक्षक आकार (aerofoil-shape) शरीर से पर्याप्त उत्थापन उत्पन्न कर सकता है। 'नासा'/नॉर्थ्रोप HL-10 पाइलट वाले वायुयानों के साथ किये गये परीक्षणों ने इस विचार की व्यावहारिकता की पुष्टि कर दी है और अमेरिका के कुछ कारखानों में अन्तरिक्ष में सामान आदि लाने-लेजाने वाले यानों के डिजायन बनाये जा चुके हैं।

# चन्द्रमा से परे

चन्द्रमा के अन्वेषण की तैयारी करते हुए अमेरिका को पहली महत्त्वपूर्ण सफलता अन्तरिक्ष में बहुत दूर मिली। उसने मैरिनर II अन्तरिक्षयान को वक्र मार्ग पर शुक्र की यात्रा पर भेजकर अपना काम आरम्भ किया। इस शुक्र ग्रह के ऊपर से गुज़रते हुए उसके उपकरणों ने पृथ्वी को जो आँकड़े भेजे उनसे उस ग्रह में कोई जीवन मिलने की आशा समाप्त हो गई है क्योंकि उसके पृष्ठ का तापमान 800° F अथवा सीसे के गलनांक से बहुत अधिक है।

1965 के ग्रीष्म में मैरिनर-IV के मंगल ग्रह के ऊपर से गुज़रते समय प्रेषित समाचार संतोषजनक नहीं थे। नहरों और मंगल ग्रह निवासियों के होने के स्वप्न धूमिल होते-से लगे क्योंकि फ़ोटोग्राफ़ों को देखने से मंगल ग्रह का पृष्ठ गर्तयुक्त और जीवनहीन लगा जो चन्द्रमा के पृष्ठ से थोड़ा ही भिन्न था। 1969 में मैरिनर-VI और VII द्वारा लिये गये चित्र भी अधिक उत्साहवर्धक नहीं थे।
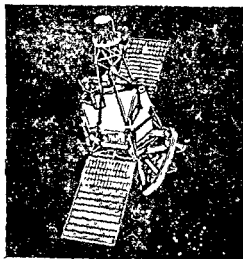


मैरीनर-II अन्तरिक्ष परीक्षक जिसने शुक्र ग्रह की परिस्थितियों के बारे में पर्याप्त जानकारी दी
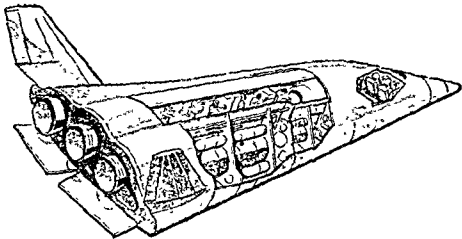
परिकल्पित 10 सीट वाला अन्तरिक्ष फेरी
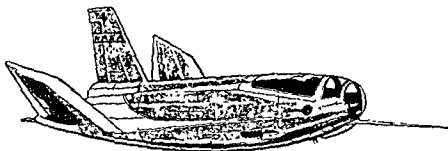
HL-10 उत्थापी शरीर अनुसंधान वायुयान

जबकि हमने चन्द्रमा तक पहुंचना सीखा ही है ऐसे समय में सौर-परिवार के अन्य सदस्यों तक मनुष्य द्वारा यात्रा करने की बात सोचना भी समयपूर्व (premature) ही होगा; तो भी वैज्ञानिक इस प्रकार के इजनों का अध्ययन कर रहे हैं जिनसे यह सम्भव हो सकेगा।

ऐसी कोई बात नहीं कि रासायनिक-प्रणोदक-रॉकेट अन्तरिक्षयान किसी दिन अन्वेषकों को मंगल और शुक्र तक न ले जा सके। ऐसे यानों के लगभग एक दर्जन डिज़ाइन प्रस्तुत किये जा चुके हैं। अन्तरिक्ष स्टेशनों तक कर्मीदल फ़ेरी रॉकेटों द्वारा ले जाया जायेगा और वहां से मंगल और शुक्र की यात्रा आरम्भ होगी। प्रस्तुत किये गये डिज़ाइनों की खुली-गर्डर (open-girder) रचना है क्योंकि वायुरहित अन्तरिक्ष में धारारेखन (स्ट्रीम लाइनिंग) की आवश्यकता नहीं होती है।

रासायनिक रॉकेटों का एक आशाजनक विकल्प विशेष प्रकार की नाभिकीय शक्ति है जिसमें प्रणोदकों का ताप बढ़ाने के लिये उन्हें दहन-कक्ष में जलाने के बजाय परमाणु रिएक्टर का उपयोग किया जायेगा। इस प्रकार का मोटर मनुष्य को बृहस्पति तक (शनि तक भी, जो पृथ्वी से 79 करोड़ 30 लाख मील दूर है) ले जा सकता है बशर्ते कि मनुष्य को यह विश्वास हो कि उसे उन ग्रहों के चन्द्रमाओं में अमोनिया अथवा मिथेन आदि उपयुक्त पदार्थ जमी
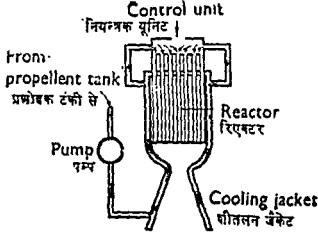
इस नाभिकीय रॉकेट में प्रणोदक को दहन-कक्ष में जलाने के बजाय रिएक्टर द्वारा गरम किया जाता है। मोटर को ठंडा करने के लिये इसे पहले कक्ष के चारों ओर परिवाहित किया जाता है।

हुई (ठोस) अवस्था में मिल जायेंगे ताकि वापसी यात्रा के लिये वे अपने यानों के लिये फिर से ईंधन प्राप्त कर सकें।

क्या हम ब्रह्माण्ड में अकेले हैं? मनुष्य ने जब से अन्तरिक्ष की ओर देखा है, तभी से वह इस प्रश्न का उत्तर पाने का प्रयत्न करता रहा है और यह जानने को उत्कण्ठित है कि क्या उसके अपने लोक के अलावा अन्य लोक भी हैं।

अमेरिका के 'राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन' ('नासा') ने ब्रह्माण्ड में अन्यत्र प्राणियों को एक सन्देश (जिसे अगले पृष्ठ पर दिखाया गया है) भेजने का पहली बार प्रयत्न किया। इस सन्देश में चित्रात्मक अभिवादन के अतिरिक्त अन्य लोक के भौतिकशास्त्री के लिये इस बात का संकेत है कि इस सन्देश को ले जाने वाले अन्तरिक्षयान को कब और कहाँ से प्रक्षिप्त किया गया।

'राष्ट्रीय उड्डयन एव अन्तरिक्ष प्रशासन' ने 3 मार्च 1972 को 'पाइनियर-एफ़' नामक अनुसंधानकारी अन्तरिक्षयान छोड़ा, जो पहली बार सौर-मण्डल से निकलकर ब्रह्माण्ड में प्रवेश करेगा। वैज्ञानिकों का कहना है कि ब्रह्माण्ड में सम्भव है कि अन्तरिक्षयान को कृत्रिम वस्तु के रूप में पहचानकर उसे किसी अन्य लोक के प्राणियों द्वारा रोका जाये।

'पाइनियर-एफ़' का वजन 260 किलोग्राम है और वह अन्य लोकों के प्राणियों के लिये पृथ्वी से अभिवादन ले जा रहा है। यह अभिवादन एलुमिनियम के सोना चढ़े पत्रक पर अंकित है और यह पत्रक अन्तरिक्षयान के स्पर्शसूत्र (एण्टेना) को सहारा देने वाले खम्बों से जुड़ा है।

यह पत्रक मानव-जाति की ओर से अन्य लोकों के प्राणियों के लिये सन्देश है। इस पर न कोई झण्डा है और न राजनीतिक सन्देश।

पत्रक पर पुरुष और स्त्री की आकृतियां अंकित हैं और पुरुष का दायां हाथ मित्रता के लिये ऊपर को उठा हुआ है।
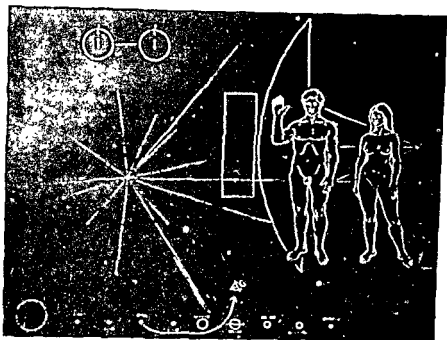
पृथ्वी से अन्य लोकों के प्राणियों के लिये सन्देश

पुरुष और स्त्री के बाईं ओर तीलीदार रेखाएं हैं जो आकाशगगा में 14 टिमटिमाते सितारों (वे नक्षत्र जो ब्रह्माण्ड में रेडियमधर्मी ऊर्जा के स्रोत हैं) को सूचक है। 15वीं रेखा दाईं ओर को दूर तक चली गई है। यह उस आकाश गंगा के भाग की सूचक है जिसमें पृथ्वी है।

तारों के विकिरण के खाके के नीचे सौर-मण्डल का रेखाचित्र है, जिसमें 'पाइनियर-एफ़' को पृथ्वी से उठकर वृहस्पति के पीछे आकाशगंगा के तारा-पूंज में जाते हुए दिखलाया गया है।

ब्रह्माण्ड की ओर जाते हुए, 'पाइनियर-एफ़' वृहस्पति ग्रह के निकट से होकर गुजरेगा। वृहस्पति सौर-मण्डल का सबसे बड़ा ग्रह है। इसका आकार पृथ्वी से 1000 गुना है और पिंड में यह अन्य सभी ग्रहों के कुल पिंड से दुगने से भी अधिक है।

पाइनियर से अलग होने से पूर्व रॉकेट 50 हज़ार किलोमीटर प्रति घंटा की रफ़्तार से चला। पाइनियर-एफ़ नक्षत्रों के चित्र लेगा।

वृहस्पति क्षेत्र में 12 चन्द्र एक बड़ा लाल निशान और भयंकर विकिरण वातावरण है। परन्तु सबसे अधिक रहस्यपूर्ण बात यह है कि इसके मोटे तथा रंगीन वातावरण में जीवन हो सकता है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अन्तरिक्षयान को वृहस्पति ग्रह तक पहुंचने में 630 से लेकर 795 दिन लग जायेंगे।

अतः हो सकता है कि आदमी किसी दिन सौर-परिवार के सभी ग्रहों की यात्रा कर ले। यद्यपि मंगल और बुध के अलावा अन्य ग्रहों में उसके उतरने की संभावना कम है क्योंकि कुछ बाहरी ग्रहों का वायुमण्डल मानव-जीवन के लिये विषैला है और उनके पृष्ठों पर लगातार बहुत ही भयंकर तूफान आया करते हैं। किन्तु इन ग्रहों के चारों ओर विद्यमान चन्द्रमाओं पर उतर सकने की सभावना है।
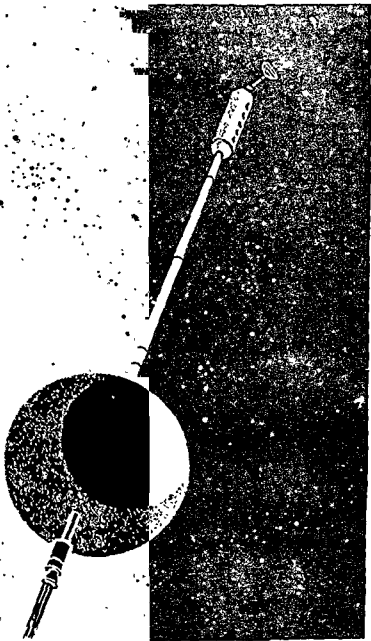
नाभिकीय शक्ति चालित अन्तरिक्षयान। विकिरण के खतरे को कम करने के लिये कर्मीदल का कमरा रिएक्टर से दूर है। बड़े गोले में हाइड्रोजन प्रणोदक है।

फिर भी वह केवल शुरुआत होगी जब अन्य सौर-परिवार बाह्य-अन्तरिक्ष के पार से संकेत करेंगे। उसके बाद रासायनिक और नाभिकीय रॉकेटों से काम नहीं चलेगा। थोड़े समय के लिये अत्यधिक प्रणोद (thrust) उत्पन्न करने वाले इंजनों के बजाय डिज़ाइन बनाने वालों को ऐसे इंजन बनाने होंगे जो लम्बे समय के लिये कम प्रणोद उत्पन्न कर सकें जिससे रॉकेट का वेग धीरे-धीरे बढ़कर इतना अधिक हो जाये कि आज उसके बारे में गम्भीरतापूर्वक सोचना भी संभव न हो।

ऐसा ही एक इंजन आयन रॉकेट (ion rocket) है जो 'विद्युत् पवन' (electric wind) उत्पन्न करता है। इस सिद्धान्त को भौतिक प्रयोगशाला में अच्छी तरह दिखाया जा सकता है। यदि किसी विद्युत् जनित्र (electric generator) अथवा स्फुलिंग कुण्डली (spark coil) को नुकीली धातु-छड़ से जोड़ दिया जाये तो नोक से हवा इतनी जोर से हटती है कि उससे एक मोमबत्ती बुझ सकती है।
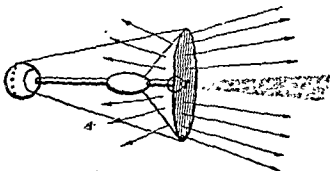
एक आयन रॉकेट। गोले में कर्मीदल के लिये स्थान है और अण्डाकार आधान में प्रणोदक है। इसमें एक नाभिकीय रिएक्टर शक्तिशाली जनित्रों को चलाता है जो आयनों को लगभग उसी प्रकार विसर्जित करते हैं जिस प्रकार किसी चित्र को बनाने के लिये एक टेलीविज़न की कैथोड किरण नली इलेक्ट्रॉनों को विसर्जित करती है। परमाणु शक्ति स्टेशनों से प्राप्त अवशिष्ट पदार्थ की बनी बड़ी 'प्लेट' द्वारा उत्सर्जित बीटा-कण ($\beta$) इन आयनों को त्वरित करते हैं।

अन्तरिक्षयान में नाभिकीय शक्ति संयन्त्र (nuclear power plant) द्वारा पर्याप्त शक्ति की विद्युत् धारा पैदा की जा सकती है जो इलेक्ट्रॉन रहित द्रव-प्रणोदक को अति उच्च गति तक त्वरित कर सकती है। इसको समझना शायद मुश्किल हो किन्तु यदि आप यह याद रखें कि आयन-नोदन 'विद्युत् पवन' है, जो किसी भी अन्य रॉकेट की भांति प्रतिक्रिया द्वारा काम करता है, तो आप उसके मूल सिद्धान्त को समझ जायेंगे।

अन्त में एक फ़ोटॉन (photon) अन्तरिक्षयान भी हो सकता है, जो प्रकाश-दाब से चलेगा, यद्यपि इस प्रकार के यान की रचना के लिये ऐसे ज्ञान की आवश्यकता होगी जो हमारी वर्तमान पहुंच के बाहर है। हो सकता है यह ज्ञान कई पीढ़ियों बाद प्राप्त हो। संक्षेप में फ़ोटॉन रॉकेट प्रकाश-सुग्राही (photo-sensitive) पृष्ठ से ऊर्जा की तरंगें भेजेगा। ये ऊर्जा-तरंगें तब निकलेंगी जब या

तो प्रकाश उस पर पड़े अथवा जब उस पर इलेक्ट्रॉनों की बौछार की जाये। हो सकता है कि यह केवल एक बहुत बड़े आकार का परावर्तक हो जिसे सूर्य की किरणों से ऊर्जा मिले। कठिनाई यह है कि शायद उत्पन्न प्रणोद परावर्तित ऊष्मा के ·001 प्रतिशत से अधिक न हो।

फलस्वरूप फ़ोटॉन रॉकेट का त्वरण इतना कम होगा कि प्रकाश के वेग के उस अंश को प्राप्त करने के लिये उसे मानव प्रचालकों की कई पीढ़ियों की आवश्यकता होगी जिससे वह बाह्य अन्तरिक्ष में अन्य तारा परिवारों (star systems) तक संभावित उड़ान कर सके।
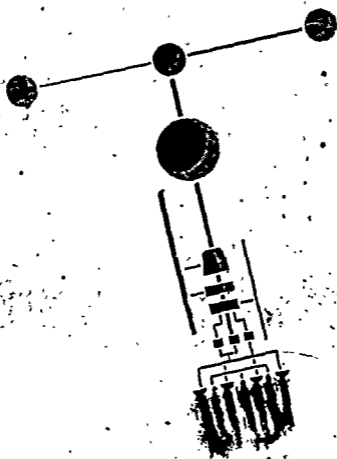
कोन्वॅर चित्रकार द्वारा असीमित अान्तर्ग्रहिक-परास से लिया गया आयन-रॉकेट अन्तरिक्षयान का चित्र।

संभवतः आदमी और औरतें एक ऐसी यात्रा आरम्भ करें जो उनके बाद उनके पोते, पोतों के पोते और फिर उनके पोते पूरी करें। इस बात पर शायद आज लोग यकीन न करें किन्तु हो सकता है कि हमारे अपने ही सौर-परिवार के ग्रहों की आश्चर्यजनक बातों को देख चुकने के बाद हमारी संततियाँ पृथक् ढंग से सोचें।

## रॉकेट विज्ञान में काम-धन्धा

नया उद्योग होने के कारण निर्देशित मिसाइल के पेशे को अपनाने वाले नवयुवक का भविष्य अत्यन्त आशाजनक है।

निर्देशित मिसाइल इतने जटिल होते हैं कि विज्ञान की अनेक शाखाओं से सम्बन्धित वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का बहुत बड़ा दल ही उनका डिज़ाइन तैयार कर सकता है। इसलिये पहले आपको यह निर्णय करना है कि इस रॉकेट विज्ञान के किस विशेष क्षेत्र में आपकी रुचि है। विमानों का ढांचा और शक्ति संयंत्रों के लिये इंजीनियरों की आवश्यकता, निर्देशन उपस्करों के लिये इलेक्ट्रॉनिकी विशेषज्ञों की आवश्यकता तथा प्रणोदकों के लिये रसायनज्ञों की आवश्यकता है। इसके अलावा कुछ शस्त्र-तन्त्रों को बनाने के लिये आवश्यक 15 लाख से भी अधिक हिस्सों का निर्माण करने के लिये हर संभव उद्योग से आदमियों और औरतों की आवश्यकता है।

अन्य जीवन वृत्तियों की भाँति सबसे अधिक उज्ज्वल भविष्य उनका है जिनके पास उत्तम शैक्षिक योग्यता हो। अधिकांश कार्यों के लिये विश्वविद्यालय की डिग्री की आवश्यकता है किन्तु तेज दिमाग वाला और बहुत बारीकी से काम करने वाला नवयुवक विश्वविद्यालय की डिग्री के बिना भी इलेक्ट्रॉनिक-संगणकों, वात सुरंग उपकरणों (wind tunnel equipments) और दूरमापी अभिग्राहियों का प्रचालन करना सीख सकता है। ये सारी बातें रॉकेट विकास के लिये बहुत ज़रूरी हैं।

अधिकाश मामलो में रॉकेटों पर काम करने वाले लोगो का इस पेशे को अपना लेने का कारण यह था कि जिन कम्पनियों में वे काम कर रहे थे उन्होंने अपने वायुयान, वायुयान इंजन, रेडियो सैट और टेलीविज़न सैट, प्रशीतक (refrigerator) और अन्य वस्तुओं को बनाने के साथ-साथ मिसाइल बनाने का ठेका भी ले लिया। इससे पुनः यह स्पष्ट हो जाता है कि विमानयानिकी के नये विज्ञान के विकास में अनेक किस्म के उद्योगों और व्यापारों का योगदान है।

भले ही आपके पास पर्याप्त तकनीकी कौशल और ज्ञान न हो, फिर भी पूरे पेशे के सबसे अधिक उत्साहजनक पक्ष यानी वास्तविक उड़ान में प्रवेश करने का अवसर है। जैसे-जैसे बन्दूकों, टारपीडो और पाइलटचालित कुछ विशेष प्रकार के हवाई जहाजों का स्थान निर्देशित शस्त्र लेते जायेंगे वैसे-वैसे

रॉयल एग्ररफ़ोर्स, ग्रार्मी ग्रौर नेवी वाले मिसाइल-प्रचालन का काम, ग्रपने हाथ में ले लेंगे। जब पूर्ण प्रशिक्षण के बाद वे सर्विसों को छोड़ेंगे तो ग्रनेक कामों के लिये उपयुक्त होंगे।

वास्तव में मानवयुक्त उपग्रह ग्रौर ग्रन्तरिक्षयान को, जिनका ग्रब निर्माण किया जा रहा है, चलाने का कार्य ग्रभी नहीं किया जा सकता है। उनके कर्मीदल में वायुयान उद्योग ग्रौर एग्ररफ़ोर्स में प्राप्य सबसे उत्तम प्रशिक्षित पाइलट होंगे। वे ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें उच्च गति वाले हवाई जहाजों को उड़ाने का ग्रनुभव होगा ग्रौर ग्रधिकांश ग्रवस्थाग्रों में, उड़ाने के कौशल के साथ-साथ उनके पास विश्वविद्यालय की डिग्री भी होगी; यह निश्चित जान पड़ता है कि ग्राने वाले कई वर्षों तक ग्रन्तरिक्षयानों को उड़ाने के लिये चालक केवल इन्हीं लोगों में से चुने जायेंगे। इसलिये 'ग्रन्तरिक्ष-यात्री' होने का यही तरीका है कि रॉयल एग्ररफ़ोर्स में भर्ती होकर कठिन परिश्रम किया जाये।

रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि रूस में किसी स्थान पर वह लड़का रहता है जो किसी दिन चन्द्रमा पर घर बनाने वाला पहला व्यक्ति होगा। यह गलत भी हो सकता है। संभव है कि वह लड़का ब्रिटेन ग्रथवा ग्रमेरिका में हो। ग्रौर, यह भी हो सकता है कि यह श्रेय ग्रापको ही मिले !

# पारिभाषिक शब्दावली

| | | | |
|---|---|---|---|
| आन्तर्ग्रहिक | interplanetary | निर्देशित मिसाइल | *guided missile* |
| अन्तरिक्ष | space | निर्देशित शस्त्र | guided weapon |
| अग्नि-बम | incendiary bomb | नासिका-कोन (नोज़्-कोण) | nose-cone |
| अतिस्वनिक | supersonic | नोदक | propeller |
| अनुक्रमानुपाती | directly proportional | नौचालन | navigation |
| अपकेन्द्री बल | centrifugal force | परिवहनीय | transportable |
| अपरिवर्ती | steady | प्रकाशबिन्दु | spotlight |
| अभिग्राही | receiver | प्रक्षेप-पथ | *trajectory* |
| ईंधन | fuel | प्रणोद | thrust |
| उड़ान | take off | प्रणोदक | *propellent* |
| उद्‌भासन | exposure | प्रशिक्षण | training |
| उपकरण | apparatus | प्रेषित्र | *transmitter* |
| उपग्रह | satellite | फ़ायर करना | fire |
| उपस्कर | equipment | बचाव-रस्सी | life-line |
| उल्कापिंड | meteorites | उपयोगी भार | pay-load |
| किरणपुंज | beam | मिसाइल- | missile |
| खगोलयानिकी(विमानयानिकी) | astronautics | वारहेड | warhead |
| गन्तव्य स्थान | *destination* | विमान चालन | air navigation |
| टैंक-मार | anti-tank | विमान-वेधी | anti-aircraft |
| तोपखाना | artillery | विरल | rare |
| त्रि-पद रॉकेट | three-stage rocket | विस्फोटक पदार्थ | explosive |
| दक्ष | *efficient* | शीतलन | cooling |
| दहन-कक्ष | combustion chamber | शूटिंग स्टार | shooting star |
| दाबानुकूलित | pressurised | संगणक | computor |
| नाभिकीय शक्ति | nuclear power | सम्पीडित | compressed |
| निकास गैस | exhaust gas | धारा-रेखा (स्ट्रीमलाइन) | streamline |
| निकास वेग | exhaust velocity | स्पुतनिक | sputnik |
| निर्देशन-तन्त्र | guidance-system | | |

## THE PROGRESS OF SCIENCE Series in Hindi
*(All books are fully illustrated or Plates on art paper)*

| | |
|---|---|
| Great Discoverers in Modern Science | *Patrick Pringle* |
| Modern Scientists At Work | Arnabel Williams Ellis |
| Men Who Changed The World | Egon Larsen |
| *Men Who Shaped The Future* | *Egon Larsen* |
| The Common Sense of Science | J. Bronowski |
| Everyday Science Topics Book I-III | T.A. Tweedie |
| Stories from Science Book I-IV | Sutcliffe & Sutcliffe |
| Achievements of Science I-VIII | M. Anderwood |
| *The Making of Man by* | I.W. Cornwall & M. Maitland Howard (Carnegie Medal Winner) |
| *Diversity of Man* | *Robin Clark* |
| Animal life in the Tropics | E M.P. Waltors |
| Life in the Deep | Maurice Burton |
| Planet Earth | Dr. Ronald Fraser |
| Weather | R.S. Scorer |
| The World of Feelings | J.D. Carthy |
| Nature and Man | John Hillaby |
| Biology for the Modern World | C H. Waddington |
| *Great Moments in Astronomy* | *Archie E Roy* |

## SCIENCE WORK LIKE THIS Series in Hindi
*(All books are fully illustrated or Plates on art paper)*

| | |
|---|---|
| Television Works Like This | J. & R. Bendick |
| Radar Works Like This | *Egon Larsen* |
| Sound Recording Works Like This | Clement Brown |
| Atoms Works Like This | John Rowland |
| Helicopters Works Like This | Basil Arkell & *John W.R. Taylor* |
| Transistors Work Like This | Egon Larsen |
| Jet Planes Work Like This | John W.R. Taylor |
| Rockets & Satellites Work Like This | John W R. Taylor |
| *Trains Work Like This* | David St. John Thomas |
| Cameras Work Like This | Maurice K. Kidd |
| Transport | Egon Larsen |